संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

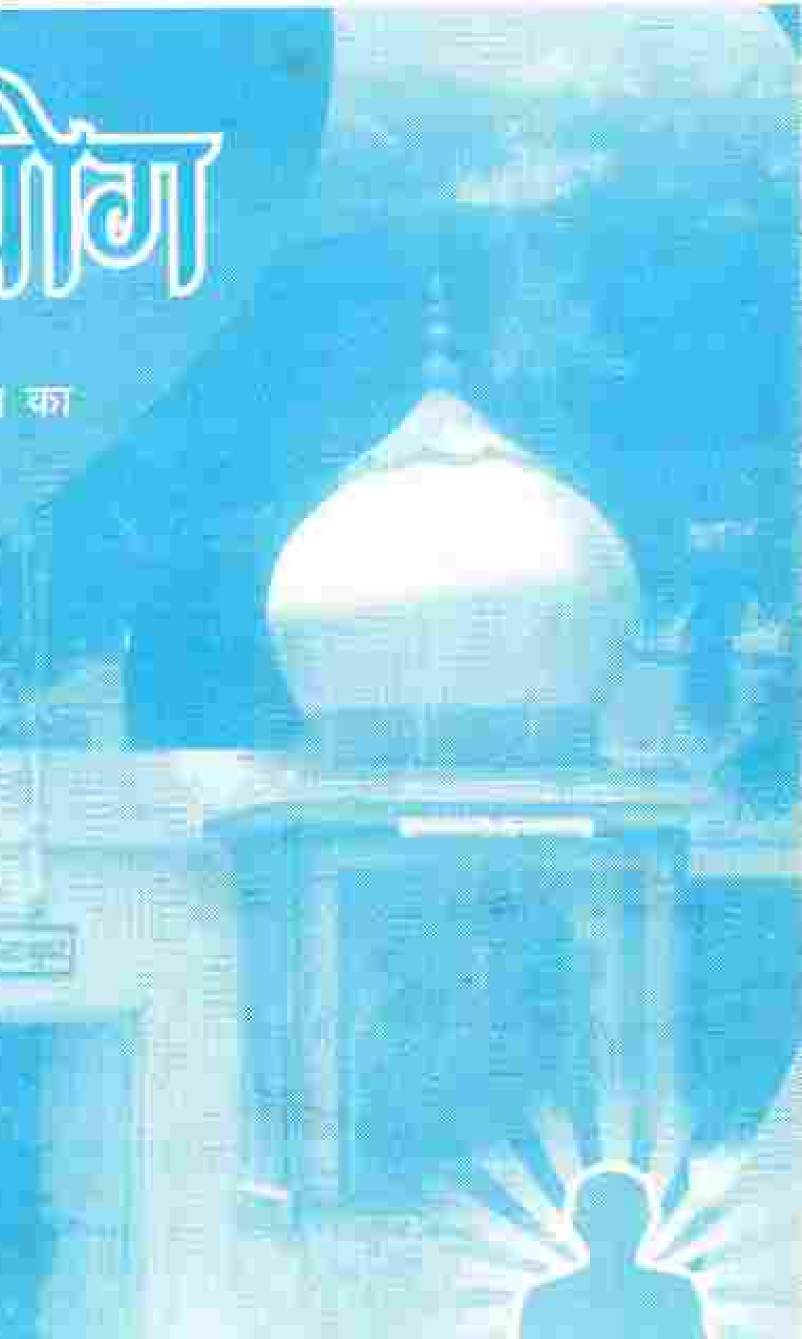

वर्ष : 41; अंक : 2
मई, 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन (आयु) – सब चलायमान और नश्वर है, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अतः सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिये। पापाचरण कदापि नहीं।

◆ ◆ ◆

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 41 अंक : 2

यामाराध्य विरिंचिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्धयेया च या योगिभिः।
यामाद्या प्रकृति वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परा
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननी स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्ता हुए, भगवान विष्णु पालनकर्ता हुए तथा भगवान शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्त्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं — स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

मई 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	यौगिक प्रश्नोत्तरी – आचार्य पूर्ण चन्द्र पंत	9
4.	श्री प्रभुचरणों में समर्पित कविता – श्री राजेश कुमार सिंह	11
5.	उपनिषदों में परम तत्व के उद्‌गार – डॉ. विजय सिंह	12
6.	गीता का सांख्य योग – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	15
7.	भगवत्प्रेम का स्वरूप – सुश्री रचना शर्मा	18
8.	भ्रम से ब्रह्म का साक्षात्कार – डॉ. जे.पी. शर्मा	21
9.	कविता – श्री देवव्रत द्विवेदी	22
10.	मेरे गुरुवर मेरे सद्‌गुरु – श्री मोहन स्वरूप	23
11.	सबसे बड़े देव मेरे श्री गुरुदेव – श्री केशवदेव उपाध्याय	24
12.	कृष्ण काले वंशी वाले – श्री जगदीश राय बसल	27
13.	रामनवमी महोत्सव सम्पन्न (आश्रम समाचार)	28
14.	योग क्या है? – डॉ. राजकुमारी त्रिखा	29
15.	श्रीमद्‌भागवत रहस्य – श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव	33
16.	प्रेम ज्योति (कविता) – सुश्री निर्मला चन्देल	36
17.	चेत जा मानव (कविता) – श्री मोतीराम गर्ग	36
18.	तत्व क्या है? – श्री अशोक दिग्विजय	37

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सार्वभौम विद्या योग

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

''योग'' आध्यात्म विद्या है। मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। सांप्रदायिक लोग 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदाय को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की विद्या है जिसमें ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप को समझाकर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाया गया है।

भगवान पतंजलि देव ने '**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**' कह करके अपने पतंजलि योग दर्शन में योग की परिभाषा बतलाई है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है – चित्त की समस्त वृत्तियों का निवरा रोध अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई चित्तवृत्तियों का बिल्कुल ही रुक जाना। चित्तवृत्तियाँ त्रिगुणात्मिका होती हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण – ये तीनों प्रकृति सम्मत गुण हैं। ये तीनों ही गुण योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है, उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुयायी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्मस्वरुप आध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है। और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य, अन्धकार एवं आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है।

योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्तवृत्तियों का निरोध करता है एवं अपने आप को केवली भाव की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना ही योगियों का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। इसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो। यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गयी है तो वह योगोपदेष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश ले सकता है तथा प्रवेश कर लेने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की

पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योग-योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपनी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है –

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥

अर्थात्–युक्त योगी कहलाता ही वह है जो ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को पहुँच गया हो। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों, किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती है जिसने योग का क्रमशः अध्ययन किया हो। योग की वर्णाक्षरी, मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है, मन सब शक्तियों का भण्डार है।

इन्द्रियाँ उसको अपने–अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती है। अतः वह इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्धादि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप, रस गन्धादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा–लौटाकर धारणा के द्वारा एकाग्र करे। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है। यह योगी की पहली वर्णाक्षरी है, जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारणा–ध्यान समाधि का अध्ययन करता हुआ संयम तक पहुँच जाता है, एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो सकता है। ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति सम्भवतः नहीं समझता होगा। अतः थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान–विज्ञानतृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना, पाताल प्रवेश करना, आकाश गमन करना। ये सब कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से प्रकृति के इस प्रकार के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बनाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभ, श्रवण, वेदना, आदर्श आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों–ज्यों साधक आत्म–साक्षात्कार के निकट पहुँचता है, त्यों–त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभ ज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार प्रातःकालीन ऊषा में हर व्यक्ति को धुंधले–धुंधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं, उसी प्रकार योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म–भाव शुद्ध सत्य के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान के साथ–साथ दूर–दूर की बातें सुनना, दूर–दूर की वस्तुओं को स्पर्श करना आदि–आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाती हैं। इन सब शक्तियों के उदय हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही

आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धिवृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अतः किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में स्थित रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समभाव से रहने लगते हैं। वह वासना, तृष्णा के जाल से बिलकुल ही दूर हो जाता है। प्राणिमात्र को अपनी आत्मा समझता है एवं अपने आपको भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मवेग देता है, यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्णभेद और जातिभेद सब मिट जाते हैं।

अतः योग–विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अधिकार भेद से इसके अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार–भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति–पाँति से सम्बन्ध नहीं रखता, प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है न कि एम.ए., आचार्य आदि का। हाँ ! शनैः शनैः पढ़ता हुआ पहली, दूसरी, तीसरी आदि कक्षाओं को क्रमशः उत्तीर्ण करता हुआ अन्त में वह एम.ए. व आचार्य पद तक पहुँच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमशः अध्ययन करता हुआ वह उच्चकोटि का विद्वान कहलाने लगेगा। इसी प्रकार से योग–विद्या का विद्यार्थी भी शनैः शनैः क्रमशः अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य ही पहुँच जायेगा, किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग एवं लययोग किस रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से अधिक उत्थान हो सकता है, इस बात को उसके शिक्षक ही समझेंगे और वे अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे चलायेंगे एवं उसको बढ़ायेंगे।

आत्मतत्व

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः, श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽचर्यो ज्ञाता कुशलाऽनुशिष्टः॥

आत्मतत्व बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलता और जिसको बहुत से लोग सुनकर भी समझ नहीं पाते, ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है। उसे प्राप्त करने वालों में भी कोई विरला ही बुद्धिमान साधक ऐसा होता है जिसने आत्मतत्व को पाकर अपना जीवन सफल बना लिया हो। तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों से उपदेश प्राप्त करके उसके अनुसार मननिदिध्यासन करते–करते तत्व का साक्षात्कार करने वाले पुरुष तो जगत में अत्यन्त दुर्लभ हैं।

संस्कार चक्र एवं इनका निरोध

आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

'संस्कार' बहुत व्यापक शब्द है। योग साधना के क्षेत्र में जहाँ इसकी व्यापकता और गहराई को समझा गया है, वहीं हिन्दू संस्कृति में उत्तम संस्कार की महत्ता को लक्ष्य में रखते हुए इसे आत्मशोधन के लिए परमोपादेय के रूप में माना गया है। संस्कार शब्द का सीधा अर्थ है शुद्ध करना, परिमार्जन अथवा शोधन करना। आयुर्वेद शास्त्र में भी द्रव्यों को कई प्रकार से शुद्ध करने को संस्कार करना कहते हैं। हिन्दू संस्कृति में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्ठि आदि सोलह संस्कारों को मनुष्य के मन और बुद्धि के निरंतर परिमार्जन द्वारा आत्म लाभ की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया ही संस्कार के रूप में माना जाता है। जन्म लेने के बाद मनुष्य का यदि अपेक्षित संस्कार नहीं होता है तो पशु तुल्य ही रह जाता है। '**जन्मना जायते शूद्र: संस्कारात् द्विज:**' अर्थात् जन्म लेने के पश्चात मनुष्य का जब तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता है तब तक उसे शूद्र ही माना गया है। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने पर व्यक्ति द्विज बनता है। द्विज बन जाने के बाद अजपा गायत्री का निरंतर जाप करते रहने से मनुष्य के ऊपर पाप का भार नहीं रहता। जाप के बल से प्रतिदिन के होने वाले छोटे–मोटे पापों का स्वत: क्षय हो जाया करता है।

प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज में द्विजों के लिए त्रिकाल संध्या करने का विधान बनाया गया है। प्रात: सूर्योदय के समय, दोपहर के समय तथा सायंकाल सूर्यास्त के समय संध्या की जाती है। इस प्रकार संध्या आत्मशोधन एवं पुण्य वृद्धि का ठोस साधन है। संध्यारूपी कर्म का चित्त पर शुभ संस्कार पड़ता है और वह आगे भी अपने जैसे शुभ संस्कारों को जन्म देता है। योगमत में दो प्रकार के कर्म होते हैं – एक क्लिष्ट कर्म, जो संस्कार या पाप को देने वाले हैं तथा दूसरे अक्लिष्ट कर्म जो वैराग्य तत्व, ज्ञान एवं मुक्ति की ओर ले जाने वाले होते हैं। चित्त की असंख्य वृत्तियाँ होती हैं। जिन्हें भगवान पतंजलि ने पाँच भागों में बाँटा है। ये क्लिष्ट –अक्लिष्ट वृत्तियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति के रूप में चित्त में रहा करती हैं, जो शुभाशुभ कर्मों को उत्पन्न करती रहती हैं। जीव दशा में मनुष्यों में क्लेश, कर्म, विपाक और आशय रहता है। ईश्वर में ये सभी नहीं रहते। अविद्या आदि क्लेश चित्त में रहा करते हैं। इसी से नाना प्रकार के कर्म बनते हैं, ये कर्म चित्त के संस्कार के अनुसार ही बनते हैं। कर्म का जो फल मिलता है उसे विपाक कहते हैं। इस कर्मफल अथवा विपाक से पुन: तत्सदृश्य संस्कार बनता है, जो आशय के रूप में कर्माशय में संचित रहा करते हैं। दुख–सुख के अनुभविता को जो सुख दुखात्मक वासना रह जाती है उसे ही संस्कार (Impressions) कहते हैं। इस प्रकार से संस्कार से पुन: वृत्ति तथा वृत्ति के

अनुसार कर्म तथा कर्म वासना एवं पुनः संस्कार का चक्र बना रहता है। यही संस्कार मनुष्य के स्वभाव के रूप में उभर कर बाहर आ कर चरित्र निर्माण के कार्य में कारण बनता है।

एक बार जन्मजा जो स्वभाव बन गया उसको हम अपनी इच्छा से भी अन्यथा नहीं कर सकते। '**स्वभावो हि दुरतिक्रमः**' मनुष्य का जैसा स्वभाव बन गया है उसमें बदलाव नहीं आया करता। गुरुकृपा एवं ध्यान योग से ही इसे बदला जा सकता है, अन्य कोई इनके बदलने का उपाय नहीं है। इस प्रकार से हर व्यक्ति अपने कर्म एवं संस्कार से निबद्ध है। इसीलिए परवश होकर कर्मों में प्रवृत्त होता है। हमारे संस्कार चित्त भूमि में अनन्तकाल तक भी पड़े रह सकते हैं।

मनुष्य ने अपने मन से कम्प्यूटर का निर्माण किया है। कम्प्यूटर मानव चित्त का ही प्रतिरूप है। किसी वस्तु को फीड करके (मैमोरी) में डाल दिया जाता है। उस मैमोरी को आवश्यकतानुसार खोलकर व उपयोग में लाकर इससे कार्य किया जा सकता है। हमारा चित्त भी संस्कारों, स्मृतियों का भण्डार है। ध्यान योग के द्वारा मन को एकाग्र करके इस जन्म की तो क्या हजारों जन्मों के संस्कारों का साक्षात्कार किया जा सकता है। कम्प्यूटर में तो थोड़ी सी सीमित चीजों को ही संचित रखा जा सकता है जबकि चित्त में संस्कारों के संचय की असीमित क्षमता है। योगदर्शन के विभूतिपाद में एक सूत्र आया है – 'संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वजाति ज्ञानम्' अर्थात् संयम के द्वारा संस्कारों का साक्षात्कार कर लेने पर योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। योगदर्शन में ऐसा भी एक और सूत्र आया है जिसके अनुसार योगी भूत एवं भविष्य की घटनाओं – संस्कारों का साक्षात्कार कर सकता है। सूत्र है –'**परिणामत्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम्**' अर्थात् धर्म लक्षण एवं अवस्था रूप परिणामों पर संयम करने से योगी भूत–भविष्य की घटनाओं का साक्षात्कार कर लिया करता है।

योगमार्ग के साधक के लिए अध्यात्म संस्कारों का संचय आवश्यक है। गीता एवं उपनिषदों का संस्कार साधक को निरंतर ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित रखता है। गुरुदेव भगवान इस संबन्ध में एक दृष्टांत सुनाया करते थे –

एक बार एक साधक सिद्धों के दर्शन की इच्छा से हिमालय की ओर गया। मन्त्र जाप तो उसका चलता ही था, हिमालय की तलहटी में एक दिन उसे एक ब्रह्मचारी मिला उसने साधक से कहा – इस निर्जन वन में क्यों आये हो? साधक ने उत्तर दिया – मैं यहाँ सिद्धों के दर्शनों की इच्छा से आया हूँ। ब्रह्मचारी ने कहा – अच्छा, तुम यहाँ तक आ ही गये हो तो मैं तुम्हें सिद्धयोगी का दर्शन कराता हूँ। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी जी साधक को अपने साथ नितान्त जंगल में ले गये। वहाँ उन्होंने अपने गुरुदेव के दर्शन कराये। गुरुदेव की आयु ढाई सौ वर्ष थी, किन्तु वे 25–30 वर्ष के युवा ही लग रहे थे। उन्होंने साधक से पूछा – तुमने उपनिषदों का कितना स्वाध्याय किया है? साधक ने कहा कि 'महाराज ! मैंने उपनिषद तो नहीं पढ़े हैं।' सिद्धयोगी कहने लगे ' अब तुम जाओ और उपनिषदों का अध्ययन करो।

अन्तःकरण को और निर्मल बना लो। इस दिव्य क्षेत्र में मल-मूत्र का त्याग करने वाला व्यक्ति नहीं रह सकता।' वह साधक वापस आया और बिजनौर में भगवतदत्त श्रोत्रिय के विद्यालय में उपनिषदों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। सिद्ध दर्शन का प्रत्यक्ष फल यह था कि एक बार पढ़ने मात्र से ही उसे सब कंठस्थ हो जाता था। इस प्रकार से उस साधक ने एक वर्ष तक भगवतदत्त जी के पास रहकर उपनिषदों का अध्ययन एवं मनन किया।

उपर्युक्त प्रकरण को यहाँ देने का मेरा अभिप्राय यह है कि उपनिषदों के पढ़ने से साधक वस्तुतः आध्यात्मिक बनता है। उपनिषदों में परमात्मा, जीव एवं मुक्ति विषयक बातें हैं। इनके मनन करते रहने पर साधक के चित्त पटल पर से संस्कार तैरते रहते हैं। अनात्म वस्तुओं में राग छूटता जाता है, रजोगुण व तमोगुण दब जाता है। चित्त में सात्विक वृत्ति की प्रधानता बनी रहती है। जगत के मिथ्यात्व का सदा ज्ञान चित्त में बना रहता है। इस प्रकार से एक शुभवृत्ति का उदय हुआ, वृत्ति शान्त होती हुई अपने जैसे एक और वृत्ति को उदित कर देती है। इस प्रकार से यह प्रवाह बना रहता है। ऐसे व्यक्ति के चित्त से लोभ, क्रोध, क्रूरता, दुर्भाव निकल जाते हैं। वह सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक व्यक्ति बन जाता है। चित्त में एक ही प्रकार की वृत्ति शान्त और उदित होती रहती है। एक ही प्रकार के वृत्तियों का आवर्तन चलता रहता है। सम्प्रज्ञात समाधि की सर्वोत्कृष्ट अवस्था निर्विचार वैशारद्य है। इसके दृढ़तर अभ्यास से योगी को आध्यात्म प्रसाद मिल जाता है। जिसके लिए कहा गया है कि प्रज्ञा प्रासाद पर चढ़ा हुआ योगी सांसारिक शोकमग्न लोगों को उसी प्रकार से देखता है जिस प्रकार से पर्वत की चोटी पर पहुँचा हुआ व्यक्ति भूमिस्थ लोगों को देखा करता है। इसे ही ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं। जो विवेकख्याति का कारण है। इसके उदय होने पर ही संसार चक्र का अन्त होता है। विवेकख्याति के संस्कारों की दृढ़ता हो जाने पर अन्य सभी संस्कार नष्ट प्रायः हो जाते हैं। विवेक ख्याति के संस्कार अन्य सारे संस्कारों को रोक देते हैं। चित्त में एक ही संस्कार निर्वाणोन्मुखी स्मृति के रूप में रहता है। निर्बीज समाधि के दृढ़तर अभ्यास से यह वृत्ति भी शान्त हो जाती है और योगी को कैवल्य लाभ हो जाता है। प्रकृति से सम्बन्ध टूट जाता है। **सत्वपुरुषयोशुद्धिसाम्ये कैवल्यम्** – के अनुसार प्रकृति (बुद्धि) पुरुष की समान रूप से शुद्धि हो जाने पर कैवल्य लाभ हो जाता है, जो योगी का परम लक्ष्य है।

चित्त वृत्तियों का नितान्त निरोध ही योग कहलाता है। विवेक ख्याति तक पहुँचने के लिए प्रबल शुभ संस्कारों का प्रवाह आवश्यक है। चित्त के निरोधावस्था को पा लेने पर सब संस्कार समाधि द्वारा दग्धबीज हो जाते हैं। इसी योगाग्नि को 'ज्ञानाग्नि' कहा जाता है। **ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन**' अर्थात् यह ज्ञान रूप योगाग्नि सब प्रकार के शुभाशुभ संस्कारों को जला डालता है, तभी निर्बीज समाधि में दृढ़ प्रतिष्ठा हो पाती है।

यौगिक प्रश्नोत्तरी

साधकों के प्रश्न एवं उत्तर श्री गुरुदेव जी द्वारा

आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त

प्रश्न – परम पूज्य श्री गुरुदेव! शास्त्रों में स्थान–स्थान पर श्रद्धा की महिमा गाई गई है और यह बताया गया है कि श्रद्धा के बल पर मनुष्य अपने मनोरथ को अवश्य सिद्ध कर लेता है। आप अपने इस अबोध बालक को यह बतलाने की कृपा कीजिए कि योग में श्रद्धा का क्या स्थान है, क्या केवल श्रद्धा करने मात्र से भी मनुष्य योगी बन सकता है?

उत्तर – हाँ वत्स! श्रद्धा का योग के साथ अटूट सम्बन्ध है। श्रद्धा रहित व्यक्ति योग मार्ग में एक कदम भी नहीं चल सकता। श्रद्धा के अभाव में उसके अंदर सतोगुण का विकास ही नहीं हो सकता और जब तक सतोगुण का विकास नहीं होगा तब तक वह योग की अन्तर्भूमिकाओं, एकाग्रावस्था एवं निरुद्धावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। सतोगुण को दैवी सम्पत्ति कहा गया है तथा उसका फल बताते हुए जगदात्मा श्री कृष्ण ने गीता में कहा है:–

''दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता'',

अर्थात्– दैवी सम्पत्ति मनुष्य को मुक्ति दिलाने वाली होती है और आसुरी सम्पत्ति उसे संसार चक्र में बांधे रखती है। अतः योग और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा ही सबसे बड़ा साधन है। श्रद्धा की परिभाषा एवं उसका फल बताते हुए प्रातः स्मरणीय भगवान श्री व्यास देव जी महाराज ने अपने भाष्य में लिखा है:–

श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः, सा हि कल्याणी जननीव योगिनं पाति।

अर्थात् चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है। वह कल्याण करने वाली होती है और माता की तरह योगी की रक्षा करती है।

प्रश्न– पूज्य गुरुदेव जी! कृपा करके इस रहस्य को खोलकर समझा दीजिए कि श्रद्धा किस प्रकार से योगी की रक्षा करती है और उसे योग मार्ग में आगे बढ़ाती है?

उत्तर– हाँ पुत्र! सुनो, यही बात मैं विस्तार पूर्वक समझा रहा हूँ। योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव जी महाराज ने योग प्रतीति के दो प्रकार बतलाये हैं – **भव प्रत्यय** और **उपाय प्रत्यय**। इनमें विदेहावस्था को प्राप्त हुए देवताओं और प्रकृतिलीन योगियों को भव प्रत्यय हुआ करता है।

अर्थात् उन्हें जन्म से ही योग की प्रतीति हुआ करती है। वे जन्म से ही भूत–भविष्य के ज्ञाता एवं योग सिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं। इसके लिए उन्हें कोई विशेष पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। किन्तु जिन्हें भव प्रत्यय प्राप्त नहीं हुआ है ऐसे योगियों को एवं सामान्य जनों को उपाय प्रत्यय से योग की प्रतीति हुआ करती है। अर्थात् उपाय प्रत्यय का सहारा लेकर ही वे पूर्णयोगी बन सकते हैं। उपाय प्रत्यय में श्रद्धा की गणना सर्वप्रथम है। देखो–योग दर्शन के समाधिपाद

का सूत्र–

"श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञापूर्वक मितरेषाम्।"

अर्थात सामान्य साधकों को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा पूर्वक क्रम से योग सिद्ध हुआ करता है। इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए भगवान व्यास देव जी महाराज ने अपने भाष्य में लिखा है कि:–

तस्य हि श्रद्धानस्य विवेकार्थिन: वीर्यमुपजायते,
समपजातवीर्यस्य स्मृतिरुप तिष्ठते, स्मृतिरुप स्थाने प्रज्ञा विवेकोपावर्तते, येन यथावत वस्तु जानाति।

श्रद्धालु व्यक्ति को स्वत: ही वीर्य अर्थात् साधन के प्रति उत्साह एवं बल की प्राप्ति हो जाती है। श्रद्धा और वीर्य इन दोनों का संयोग हो जाने से साधक के अंदर स्मृति–रुपस्थान हो जाता है।

प्रश्न– प्रभो! स्मृतिरुपस्थान का अर्थ मैं नहीं समझ पाया?

उत्तर– स्मृतिरुपस्थान की व्याख्या करते हुए योग दर्शन में कहा गया है:– **अनुभूत विषयासंप्रमोष: स्मृति:।** अर्थात् अनुभव किये गये विषयों का मन में ज्यों का त्यों बना रहना, उसे कभी न भूलना और इस प्रकार जन्म–जन्मान्तर का ज्ञान बना रहना स्मृतिरुपस्थान कहलाता है। स्मृतिरुपावस्था से साधक को स्फुटप्रज्ञालोक हो जाता है। अर्थात् उसकी बुद्धि का खजाना खुल जाता है। तब उसकी बुद्धि सत्य को धारण करने वाली हो जाती है। उसकी बुद्धि में जो भी आता है वह सब सत्य ही होता है। इस प्रकार प्रज्ञाविवेक हो जाने से योगी पूर्णतत्वदर्शी बन जाता है और उसकी स्थिति ऐसी बन जाती है, जिसके लिए योग दर्शन–व्यास भाष्य में कहा गया है:–

प्रज्ञाविवेकमासाद्य न शोचति न कांक्षति।
भूमिष्ठानिव शैलस्थ सर्वान प्राज्ञोऽनु पश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञाविवेक हो जाने से योगी न तो किसी बात के लिए शोक करता है और न किसी प्रकार की आकांक्षा ही रखता है। वह सांसारिक जनों को इस प्रकार देखता है जैसे कि किसी उच्च पर्वत शिखर पर बैठा हुआ व्यक्ति भूमि पर बैठे हुए लोगों को देखता है। इस प्रकार श्रद्धा ही उपाय प्रत्यय (साधन योग) का मूल एवं योगारूढ़ता का रहस्य है। श्रद्धावान व्यक्ति अपनी श्रद्धा के बल पर वीर्य, स्मृति एवं प्रज्ञा विवेक को प्राप्त करता हुआ योग की उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर लेता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है:–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिं न चिरेणाधिगच्छति।।

अर्थात् श्रद्धालु, साधन परायण और संयमी व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिसे पाकर वह भगवत प्राप्ति रुप परम शान्ति को पा जाया करता है। ●●●

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया, उ.प्र.

जो योगी का है मूल मंत्र, वो गीता का है सार,
योग ही बस जीवन है, बाकी सब बेकार।
योग ही बस———

1. शक्ति केवल योग में, निगमागम ये गाय,
योगियों के योग से, इन्द्रासन हिल जाय,
उग्र कहे सुख चैन से, अंत मोक्ष को पाय,
अमर कृत है उनका ही, जो योगी है भाय,
योगी जन ही करते, निराकार साकार,
योग ही बस———

2. व्यास, वशिष्ट, गोरख, पातंजलि, कणाद,
इनके योग से हुए, गांव–नगर आबाद,
योग बल से भव सागर, पार किया निषाद,
योग की अनदेखी से, लंका हुआ बर्बाद,
स्वर्ग–भू पर लाने का, योग है आधार,
योग ही बस———

3. योग बिना वक्त करता है, नूर को बेनूर,
सद्‌गुरु से भी रहते है, वैसे प्राणी दूर,
दिल का जख्म थोड़ा ही, बन जाता नासूर,
राग–द्वेष से रहे, ये मन सदा मजबूर,
योग से प्रभु जी करते, जग की नैया पार,
योग ही बस———

4. रामायण और गीता से, मिलता है संदेश,
योग से खुश रहता है, मानवता व देश,
योग की प्रतिमूर्ति है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश,
योग गुरु प्रभु रामलाल का, अंशी है राजेश,
योग दीक्षा देते, श्री चन्द्र मोहन सरकार,
योग ही बस———

उपनिषदों में परम सत्य के उद्‌गार

– डा. विजय सिंह –

आध्यात्मिक जीवन को प्रकाशित करते हुये, उपनिषद हमारे धर्ममय जीवन को एक अपूर्व अनुशासन में शासित करते हैं। उनके प्रत्येक कथन में गहन, मौलिक विचार भरे हैं जो हमें उच्च, पवित्र एवं एकाग्रता प्रदान करते हैं। जर्मन दार्शनिक शोपेन हावर का कथन है– ''समस्त संसार में उपनिषदों जैसा कल्याणकारी और आत्मा को उन्नत करने वाला कोई और ग्रंथ नहीं है। ये सर्वोच्च प्रतिभा के प्रसून हैं। देर–सबेर ये लोगों की आस्था का आधार बनेगें।''

उपनिषदों के रचयिता ऋषि वर्ग जिनकी आत्मा निर्मल है, वे अपने प्रज्ञान से अबूझ जीवन के रहस्यों को उद्‌घाटित करते हैं। भगवती गीता को भी सुउपनिषत्सु अर्थात् सुन्दर उपनिषद कहा गया, जिसके अवगाहन से हमें अंतर्दृष्टि और आत्म–बल मिलता है।

उपनिषद् शब्द का सीधा अर्थ है सद्‌गुरु के सानिध्य में नीचे निकट बैठना। 'उप' (निकट), नि (नीचे) और 'सद' (बैठना)। यह नितान्त सत्य है कि आध्यात्म जगत में प्रवेश बिना सिद्ध सद्‌गुरु के कृपा के होना सामान्य जन में असम्भव है। अतः अति प्राचीन काल (वैदिक) में भी गुरुदेव आत्म जिज्ञासु शिष्य को भाँति–भाँति प्रकार से परख कर जब आश्वस्त हो जाते थे कि यह भोगवादी प्रवृत्ति का नहीं अपितु आध्यात्मिक है, तब उसे गुप्त मंत्र और गुह्य विधान दीक्षा विधि में प्रदान कर अपनी कृपा से अन्तर राज्य में प्रवेश करा देते थे। उपनिषदों के पाठ से संस्कार तथा सत्व का विकास आज भी कोई पा सकता है परंतु आन्तरिक दृष्टि तो सद्‌गुरु के सानिध्य से ही प्राप्त हुआ करता है। लगभग सभी उपनिषदों में ''ओम्'', ''ब्रह्म'' जीवन–मृत्यु आदि मौलिक बातों की चर्चा हमारे विचारों को समुन्नत और चिन्तन की प्रक्रिया आन्तरिक बनाती है। वहीं आत्म विद्या को अति गोपनीय रखा गया है। देखें–

'गुहया आदेशाः' – छान्दोग्य उपनिषद्

'परमं गुह्यम्' – कठोपनिषद

'वेदान्ते परमं गुह्यं' – श्वेता. उपनिषद्

'उपनिषदं रहस्यं यच्चिन्त्यम' – केनो उपनिषद्

बार–बार आत्मविद्या को गोपनीय बताते हुए केवल सद्‌पात्र को दीक्षित करते हुये रहस्यों को गुप्त रखने का आदेश दिया गया है। भारतीय परम्परा में एक सौ आठ उपनिषदों का होना माना गया है। श्री शंकराचार्य जी ने मुख्य ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य किया है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहद्–आरण्यक तथा श्वेताश्वर नाम से उपनिषद् जाने जाते हैं। इनमें जो मंत्र या ऋचायें आयी हैं, वे सनातन, कालातीत हैं। ऋषियों को जिन सत्यों का दर्शन हुआ वे उनके प्रत्यक्ष, अनुमान या चिन्तन द्वारा प्रकट नहीं हुये हैं।

अपितु ऋषियों को विशुद्ध प्रज्ञा–आलोक में दर्शन हुआ है। इसलिये ऋषि इसे अपने पुरुषार्थ का परिणाम नहीं मानते क्योंकि वे इनके आविष्कारक नहीं है। **"पुरुषप्रयत्नं बिना प्रकटीभूत"**। अत: यह सत्य अपौरुषेय और नित्य है।

उपनिषद् हमें प्रकृति तथा इसके संचालक देवों की उपासना से हटाकर स्वयं आत्मा में प्रतिष्ठित होने के लिये प्रेरित करते हैं। वह क्या है जिसे जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है। वृहद उपनिषद् में वह कथा कही गयी है जिसमें जब इन्द्र के सेनापतित्व में असुर विजय प्राप्त कर सभी देवता अपने–अपने सामर्थ के बखानने में व्यस्त थे। उस समय एक यक्ष अद्भुत सामर्थ्य वाला प्रकट होकर एक तिनका सामने रखकर कहता है– हे अग्नि, हे वायु, तुम इस तृण को अपनी शक्ति से उड़ा–जला दो। सभी देव अपने सामर्थ्य का पूर्ण उपयोग करते हुये भी उस तृण को नष्ट नहीं कर पाते है। तब उन्हें इस सत्य का पता चलता है कि ब्रह्म की शक्ति ही अग्नि, वायु आदि देवताओं को भी सम्भाले हुये है। अत: सत्य हमारे अन्दर है। उपनिषद् हमारे साधना की अन्तर–माला को प्रकाशित करते हैं। कैसे जीवात्मायें ब्रह्म तक रूपान्तरित होती हैं।

बाहरी यज्ञों की अल्प उपयोगिता तथा हिंसा प्रधान यज्ञों की नि:सारता को उपनिषदों में बताया गया है। स्मृति में भगवान मनु कहते हैं– शिक्षा देना ब्रह्म यज्ञ है, बड़े–बूढ़ों की सेवा पितृयज्ञ है, महापुरुषों और विद्वानों का सम्मान देवयज्ञ है, धार्मिक कृत्यों का सम्पादन और दान भूतयज्ञ है, और अतिथियों का सत्कार नर यज्ञ है।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्।।

सच्चा यज्ञ तो सत्य की खोज, अपने अहंकार का त्याग और अन्त: में आत्म–दर्शन ही है। कठोपनिषद् में यम–नचिकेता प्रकरण में आत्मा व शरीर के सम्बन्ध को बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। बताया गया है कि यह मानव काया एक सुन्दर रथ है। इस रथ में आरूढ़ इसका स्वामी आत्मा है। इस रथ में इन्द्रियों के दस घोड़े जुते हुए हैं। मन की लगाम पकड़ कर 'बुद्धि रूपी' सारथी इस रथ को चला रहा है। इन्द्रियों के घोड़े विषय रूप चारे को चर कर अस्तित्व में है। इसीलिए मन, बुद्धि और इन्द्रियों सहित आत्मा को भोक्ता या जीवात्मा कहा गया है। देखें–

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथ मेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण:।।

उपनिषदों के मंथन से हमें ऋषिवरों के चार अनुभूत सत्य का बोध होता है: 1. निरपेक्ष "ब्रह्म" 2. सृजनात्मक शक्ति ईश्वर 3. विश्व–आत्मा हिरण्य गर्भ और 4. सम्पूर्ण जगत।

साधक और साधना कि दृष्टि से हमें जगत से मनोनिग्रह द्वारा अन्तर जगत में प्रवेश कर अपनी आत्म सत्ता का बोध, फिर विश्व–आत्मा हिरण्य गर्भ में तादात्म या ईश्वरत्व की उपलब्धि और सर्वोच्च निर्विकल्प समाधि में ब्रह्मस्वरूपता की प्राप्ति है।

बिना वैराग्य, अन्तर तड़पन के अन्दर की सत्ता तक पहुंचना असम्भव कार्य है। मैं कौन हूँ? यह जगत कैसे बना? जन्म–मरण क्या है? इसकी उत्कट जिज्ञासा करने का आदेश उनषिदों में मिलता है। अविद्या रुपी माया सत्य को ढके है। अतः हमें असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चल। ऐसी प्रार्थना ईश्वर से की गई है क्योंकि हम अज्ञान, अंधकार, मृत्यु के संसार में रहते हैं। ईश्वर की उपासना से ही यह अविद्या का नाश होना बताया गया है।

उपनिषद् का स्पष्ट मन्तव्य है कि हम ईश्वर को ईश्वर तुल्य होकर ही जान सकते हैं। हृदय की निर्मलता व विश्वास से हम ईश्वर को देख सकते हैं।

एक बात और स्पष्ट रूप से उपनिषद् में कही गयी है। आध्यात्मिक उपलब्धि के लिये हमारे अन्दर उत्कट आध्यात्मिक अभिरुचि होना आवश्यक है। वृहदारण्यक उपनिषद् में यही दर्शाया गया है। योगेश्वर याज्ञवल्क अपनी समस्त सांसारिक वैभव को अपनी दोनों पत्नियों, कात्यायनी और मैत्रेयी में बांटने का प्रस्ताव रखते हैं। मैत्रेयी पूछती है–क्या! सांसारिक वैभव से उसे आध्यात्मिक जीवन प्राप्त हो सकेगा? याज्ञवल्क ने कहा– धन वैभव से सांसारिक सुख भोगा जा सकता है इससे आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति नही की जा सकती। मैत्रेयी तब सांसारिक ऐश्वर्य को त्याग कर अपने पति से सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर आत्म प्रतिष्ठित होती है।

उपनिषदों में हमारे नैतिक जीवन के आधार पर ही आध्यात्म राज्य का नींव पड़ना बताया गया है। अशान्त मन आत्मा की ओर से विमुख रहता है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है– एक ऐसा गुरु जो स्वयं परम लक्ष्य पर पहुंच चुका है वही आत्म जिज्ञासु शिष्य को सहायता दे सकता है। जिसे गुरु (सच्चे) मिल गया, वही आत्मा व परमात्मा को जान सकता है। ''आचार्यवान पुरुषों वेद''। गुरु की कृपा पाया शिष्य ही उस परमात्मा को जानता है।

उपनिषद ''**अपरा विद्या**'' निम्नतर ज्ञान और ''**परा विद्या**'' आत्म ज्ञान का भेद बताते हैं। जीवन यापन हेतु लोक विज्ञान, देव विज्ञान (यज्ञ) समाज के संदर्भ में नैतिक जीवन का ज्ञान अपरा विद्या कही गयी है। परा विद्या आत्मानुसंधान, जन्म–मृत्यु, ब्रह्म ज्ञान आदि से सम्बंधित है। जीव को हर प्रकार से परा–विद्या पाने हेतु ब्रह्मज्ञ सिद्ध सद्गुरु के समीप जाना चाहिए। अपने उन्नत आचरण, सेवा एवं उत्कट जिज्ञासा से सद्गुरु कृपा भाजन होकर अभ्यास एवं वैराग्य के दो डैनों के सहारे ही जीवात्मा की उड़ान परमात्मा की ओर होती है।

गीता का सांख्य योग

पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय

गीता का द्वितीय अध्याय सांख्य योग है। सांख्य दर्शन में आत्म तत्व का विवेचन है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है। जैसे समुद्र अथाह जलराशि वाला है, उसमें से थोड़ा सा जल निकाला जाये तो निकला जल सागर नहीं हो सकता है। लेकिन वह सागर का जल कहा जायेगा। गीता में भी भगवान सांख्य के माध्यम से अर्जुन को विषाद से मुक्त करना चाहते हैं। जिससे परमात्मा कृष्ण का लक्ष्य पूरा हो सके। ईश्वर का सदैव सतोगुणी की रक्षा तथा धर्म की स्थापना ही लक्ष्य होता है। अपने कार्य के संञ्चालन हेतु वे किसी माध्यम का आश्रय ग्रहण करते हैं। इससे उनका कार्य आसान हो जाता है। अर्जुन सतोगुणी के साथ योग्य जिज्ञासु शिष्य है। इसलिए अर्जुन के तमाम प्रश्नों के उत्तर में कहते हैं–

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादाश्च भाषसे।
गतासूनगतासूश्च नानुशोचति पण्डिता:।।

अर्थात् अर्जुन तू न शोच करने योग्य के लिये शोक करता है तथा पण्डितों की तरह से बोल रहा है। परन्तु पण्डित जन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिए कभी शोक नहीं करते हैं। क्योंकि उनको ज्ञान होता है कि आत्मा का कभी नाश नहीं होता है। शरीर परिवर्तनशील है। आत्मा शरीर परिवर्तित करते समय दूसरे शरीर का आश्रय ले लेती है।

सांख्य दर्शन में ''**सम्यक्ख्यानम्**'' अर्थात सम्यक् विचार जिसको विवेक बुद्धि कहते हैं। जिसके होने से व्यक्ति साधन के सोपान क्रम को ग्रहण कर बढ़ता है।

युद्ध के मैदान में सेनाएं खड़ी हैं। ऐसे विषम स्थल में अज्ञानता का होना कायरता को प्रदर्शित करता है। क्योंकि सन्धि के सारे प्रस्ताव व्यर्थ हो जाते हैं। युद्ध ही एक विकल्प सबके सम्मुख उपस्थित हो गया। इसलिए ऐसे समय में नपुंसकता तथा हृदय की दुर्बलता को त्यागने की बात भगवान कृष्ण करते हैं। विभिन्न प्रकार की बातों को स्वयं अर्जुन कहता है–

कार्पण्य दोषोपहतस्वभाव:।
पृच्छामित्वां धर्म सम्मूढ़ चेता:।।
यच्छ्रेय: स्यानिश्चतं ब्रूहि तन्मे।
शिष्यतेऽहं शाधि मांत्वां प्रपन्नम्।।

अर्जुन कहता है कि मैं धर्म के विषय में मोहित चित्त वाला सा हो गया हूँ। मैं आपका शिष्यत्व ग्रहण करता हूँ। आज जो उचित हो उसको बतावें। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सद्गुरुदेव भगवान अपने अनन्य और योग्य शिष्य को शक्तिपात द्वारा अज्ञानता की गांठ खोल देते हैं।

अथवा लौकिक जगत में देखे तो विद्यालय में शिक्षक की एक डांट शिष्य की गांठ खोल देता है विद्यार्थी अपने समस्या का समाधान पा जाता है। यहां भी विद्यार्थी पर शिक्षक का शक्तिपात ही दिखता है। यह शक्तिपात वाणी की थी। जिससे विद्यार्थी चैतन्यता को प्राप्त कर गया तथा उसकी आज्ञानता की गांठ खुल जाती है। ठीक यही बात अर्जुन के साथ योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण का अपने पात्र शिष्य अर्जुन को भी किया गया होगा वैसे सामान्य मनुष्य की सामान्य बुद्धि को जब किसी कार्य में असफलता प्राप्त होती तो अन्ततः वह ईश्वरापन्न होता है। जिससे उसका कुछ न कुछ समाधान अवश्य निकल जाता है। अर्जुन निश्चय ही भगवान द्वारा किसी भी प्रकार से शक्तिपात होने से ही अचानक कह उठा– **''शिष्यस्तेऽहं''** और चुप होकर रथ में बैठ गया। शिष्य और गुरु का मौन वार्तालाप हो गया। अब जगत के कल्याणार्थ भगवान अर्जुन को माध्यम बनाकर समस्त जीवों के कल्याणार्थ जो कुछ कहा– उसमें आत्मतत्व का विश्लेषण है। महात्मा चरणदास ने भी उस आत्मतत्व के बारे में लिखा–

आप भुलाने आप में, बँधो आप ही आप।
जाको ढूंढत फिरत हो सौतू आपहि आप।।
आपा खोजे आप लखि आप अपन को देख।
चरणदास नहि तू ब्रह्म है तू ही पुरुष अलेख।।

कबीर ने भी उस आत्म तत्व के बारे में प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से कहा–

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढ़ै वन माहि।
ऐसे घटि–घटि राम है दुनिया देखे नाहि।।

भगवान कृष्ण ने जब यह समझ लिया कि अर्जुन अब यथार्थता को ग्रहण करने योग्य हो गया है। तब उन्होंने कहा– अर्जुन जिस शरीर के बारे में तुझे मोह रहा है। यह स्थूल शरीर का विकार अज्ञान से आत्मा में दिखाई देता है। उसी प्रकार से सूक्ष्म शरीर का विकार भी व्यक्ति के अज्ञानता के कारण आत्म तत्व में दिखता है। किंतु एक तत्वज्ञानी पुरुष इस अज्ञानता से मोहित नहीं होता है। क्योंकि इस दृश्य जगत में सत् वस्तु तथा असद्वस्तु दोनों है। ज्ञानी सद्वस्तु का चयन स्वाभाविक रूप से कर लेता है। क्योंकि वह समझता है कि असद् वस्तु अज्ञानता का प्रतीक है। इसलिए भगवान ने कहा–

अविनाशी तुत्तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति।।

अर्थात इस दृश्य जगत में जो शक्ति व्याप्त होकर दृश्य जगत की वस्तु को सत्तावान (शक्तिवान) बनाये हुए है। उसका नाश कभी भी नहीं होता है। तथा उसका नाश भी कोई नहीं कर सकता है। किंतु जीवात्मा का शरीर नाशवान होता है। वह चिदांश आत्मा जो शरीर में विद्यमान है, उसका कभी भी नाश नहीं होता है। जो इस तत्व को जानता है। वही वस्तुतः रहस्य को समझता है।

पुनः भगवान ने कहा–

वेदा विनाशिनं नित्यं यः एनमजम व्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थकं घातयति हन्तिकम्।।

भगवान अर्जुन के विषाद को तत्वज्ञान के माध्यम से समाप्त करते है। क्योंकि युद्ध के क्षेत्र में उसे गुरु, पितामह , भाई कुटुम्बी आदि को शरीर रूप में देखकर विषाद उत्पन्न हुआ था। किंतु जैसे–जैसे भगवान आत्मतत्व परमात्म तत्व के बारे में बताते हैं। वैसे–वैसे अज्ञानता की गांठ खुलती हुई दिखाई देती है। यही अज्ञानता ही विषाद की जड़ होती है। भगवान इसके लिए धमकाते हुए से दिखते हैं। एक शिक्षक की तरह कहते हैं–

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।

अर्थात् क्षत्रियों के लिए युद्ध स्वर्ग का द्वार होता है और विरले क्षत्रिय ही इसको प्राप्त हो पाते हैं। यदि ऐसे धर्म से युक्त युद्ध को नहीं करोगे तो तुम अपने धर्म एवं कीर्ति को खोकर पाप के भागी बनोगे। यह पाप रूपी अपकीर्ति लोगों द्वारा बहुत काल तक गायी जायेगी। यह अपकीर्ति तुम्हारे जैसे पुरुषों के लिए मृत्यु के समान होगी। इसलिए फल की आकांक्षा छोड़कर उपस्थित युद्धरूपी कार्य को करो। जिससे यदि मृत्यु भी हो जायेगी तो भी स्वर्ग की प्राप्ति कर लोगे। जीतने पर पृथ्वी का सुख भोगोगे। भगवान ने युद्ध के परिणाम को भी सुना दिया। अर्थात् दोनों हाथों में लड्डू की बात चरितार्थ हो गयी। यह युद्ध भी स्वतः उपस्थित है।

गीता जहाँ एक ओर आध्यात्म जगत का ज्ञान कराकर उसे समृद्ध करती है। उसी प्रकार लौकिक जगत को भी सिद्ध करने वाली है। आध्यात्म जगत सूक्ष्म रूप है। जबकि लौकिक जगत स्थूल है। ऐसे में सूक्ष्म तत्व का विवेचन कर पाना बहुत न्यायसंगत नहीं हो पायेगा। जबकि स्थूल जगत का विवेचन सम्भव है। मेरे श्रद्धेय सतसंगी गुरुभाइयों आज तत्वज्ञान को न जानने वाले वणिक वृत्ति ने ईश्वर के स्थूल स्वरूप को भी विकृत्त कर रखा है। उसका मूल कारण तत्व ज्ञान अर्थात् शास्त्र ज्ञान का भी अभाव दिखता है। ईश्वर का स्वरुप कैसा?–

''**कर्पूरगौरं करुणावतारं**'' अथवा ''**शान्ताकारं भुजगशयनं**''। ईश्वर के इस सूक्ष्म रूप को उच्चकोटि का भावापन्न साधक ही बना सकता है। इसलिए आत्म तत्व के चिन्तन को प्रधान मानकर जीवन निर्वाह श्रेयस्कर होगा। इसलिए गीता का अध्ययन आध्यात्म शक्ति को जाग्रत करने वाला है। भगवान ने अर्जुन के माध्यम से द्वितीय अध्याय में तत्व विवेचन किया है। जिससे साधक समुदाय अभ्युत्थान की ओर अग्रसर हों।

भगवत्प्रेम का स्वरूप

रचना शर्मा, गंगापुर सिटी

मनुष्य का अस्तित्व तीन तलों में विभाजित है– शरीर, बुद्धि और हृदय। दूसरी तरह कहे तो कर्म, विचार और भाव इसलिए आध्यात्मिक जगत में कर्मकाण्ड स्थूलतम क्रिया है दूसरा द्वार है ज्ञान विचार चिंतन मनन का, दूसरा द्वार पहले से अधिक सूक्ष्म है, तीसरा द्वार है भाव अथवा प्रीति का जो कि अत्यंत सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

श्रुतियों वेदों पुराणों में परमात्मा को प्रेमस्वरूप बताया गया है वास्तव में विशुद्ध प्रेम परमात्मा का साक्षात् स्वरूप ही है जिस प्रकार सूर्य प्रकाश का उद्‌गम स्थान या प्रकाशस्वरूप ही है इसलिए परमात्मा को प्रेम रस सागर भी कहा गया है। उस परमात्मा का यही प्रेमरूप ही भक्ति योग है। यही प्रेमात्मिका भक्ति जीवन का अर्न्तसंगीत है उस अविनाशी परमतत्व की भक्ति एक परम स्वीकृति है कि मैं यद्यपि लहर हूँ, परंतु सागर से पृथक नहीं प्रेमात्मिका भक्ति एक बोध है कि मैं सागर हूँ यही बोध जीवन का परमानन्द है। कर्मकाण्ड से भी लोग पहुँचते हैं ज्ञान से भी लोग पहुँचते हैं परंतु यह यात्रा संक्षिप्त है प्रेमरूपी भक्ति तो एक छलांग है जिसमें कोई सीढ़िया नहीं है दूरी है ही नहीं भक्ति एक क्षण में घट जाती है यहाँ तो केवल भाव की बात है इधर भाव उधर रूपान्तरण। कर्म में तो कुछ करना होता है, विचार में चिंतन मनन करना है भक्ति में न सोचना है न करना है होना है इसीलिए वेदों पुराणों में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने समस्त ज्ञान का निचोड़ अंत में एक ही श्लोक में देते हुए कहा है कि–

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिठयामि मा शुच:।।

"हे अर्जुन सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आजा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा।"

यह भगवदाश्रय शरणागति ही सम्पूर्ण गीता का सार है। प्रभु चाहते हैं तुम कुछ मत करो पूर्ण रूप से मेरे शरणागत हो जाओ। पूर्ण शरणागति ही तो भक्ति का महाभाव है क्योंकि जब तक हम अपने आप को पूर्ण रूप से प्रभु को समर्पण नहीं करेंगे तब तक उस परम प्रेम अनन्तरस को प्राप्त नहीं कर पाऐंगे। "मैं भगवान का हू और भगवान मेरे हैं" यही तो भगवदाश्रय है। भक्ति में कुछ करने की आवश्यकता नहीं है केवल पुकारना होता है। भक्त अपने परमात्मा को पुकारता है। खोजता नहीं। लोग परमात्मा को जंगलों में, पहाड़ों में खोजते हैं, लंबी–लंबी यात्राएँ करते हैं परंतु भक्त के लिए ऐसा नहीं है भक्त शांत होकर बैठ जाता है। आनंदमग्न हो डोलता है क्योंकि उसके प्रभु तो नित्य उसके समीप है भक्त जब नाचता है तो वो नहीं नाचता उसके हृदय में विराजमान प्रभु नाचते हैं पूर्ण भाव से भरे हृदय को प्रभु को समर्पित करके भक्त विह्वल होकर यही पुकार करता है– "प्रभो, जब आपकी मर्जी हो आओ मैं कहा आपको ढूंढू, कहां खोजूं, खोजना भी चाहूं तो कैसे खोजूं? मेरे पास तो आपका पता भी नहीं। मैं असहाय हूँ, बस आपके

लिए रो सकता हूँ, जब आपको लगे मैं पात्र हूँ आ जाना प्रभु।'' भक्त अपने मैं को गिरा देता है। जब हम अपने आप को समर्पित कर देते हैं उसकी प्रतिक्षा करते हैं क्योंकि हमारे पास कोई उपाय नहीं। भक्त जब भावविभोर होकर–गहन प्यास से भरकर अपने परमपिता को याद करते हैं तो परमात्मा को आना ही पड़ता है। परमात्मा आते हैं जब पुकार पूरी हो जाती है प्यास गहन हो जाती है तो आना पड़ता है। भक्ति के लिए कोई साधन नहीं सिर्फ भाव भक्ति के लिए कोई सीढ़ियाँ नहीं सिर्फ छलांग लगाने का साहस अपने को छोड़कर परमात्मा में गिरने की हिम्मत। ठीक उसी प्रकार जैसे नदी सागर में गिरती है। जब नदी सागर में गिरती है तो वे कूल–किनारे जिनमें वो बही, वे पर्वत श्रृंखलाएँ जिनमें वो जन्मी, वे वृक्ष, वो सुंदर सुबह और सांझ– न मालूम कितने किनारे, कितने गाँव, कितने गाँव वे सब उसे याद आती होंगी उसे उसका अतीत रोकता होगा कि क्यूं तू अपने आप को मिटाती है। तू तू नहीं रह जाएगी तेरा तादात्मय खो जाएगा, तू अपने किनारे मत छोड़ क्योंकि किनारों में ही तेरा अस्तित्व है तेरा तादात्मय है, तेरी परिभाषा है कि तू गंगा है, सिंधु है, तू नर्मदा है, सागर से मिलकर न तू गंगा रह जाएगी न सिंधु न नर्मदा सागर में गिरते ही तू तू नहीं रह जाएगी तेरा अपना अतीत है तेरी अपनी विशिष्टता है उसे याद आते है कि शहर में कितने लोगों ने पूजा की, उसमें कितने दीये छोड़े गए। परन्तु फिर भी वह मिटने चली है अपने गहरे सागर में। वह कुछ नहीं सोचती बस उसका तो अपना लक्ष्य है। उस अनंत सागर की गहराइयों में, उस असीमित की गोद में अपने आपको छुपाना चाहती है। बस उसी में विलीन होने के लिए वह निरंतर चली जाती है उसी प्रकार भक्त परमात्मा में अपने आपको खोते हैं। परमात्मा की भक्ति की शुद्धता मनुष्य के चिन्ह से अनुभव होती है कैसे जानेंगे कि कोई जाग गया? कैसे पता लगेगा कि किसी में भक्ति का उदय हुआ? कैसे जानेंगे की कोई उस परमतत्व से जुड़ा? जो हमारे अंदर भक्ति उमड़ रही है उसे कैसे पहचानेंगे? अगर हमारे अंदर यात्रा शुरू हो गई परमात्मा की तरफ तो उसकी पहचान कैसे करेंगे उसकी कसौटी क्या होगी? भक्ति की परिशुद्धि का ज्ञान लौकिक प्रीति की भांति ही होता है। प्रीति तो प्रीति है लौकिक हो अलौकिक हो उसके लक्षण तो एक जैसे हैं। गहराई बढ़ जाती है कोई परमात्मा के लिए रो रहा है उसके आंसुओं में सागर की गहराई होगी जैसे लोक में प्रियतम व्यक्ति की चर्चा से पुलक अश्रुपात होते हैं गदगद भाव पैदा होता है। चेहरे पर एक आभा छा जाती है। अपने प्रियतम की चर्चा मात्र से उसका चेहरा जो बुझा–बुझा था, उस पर ज्योति जल उठती है। भगवत् कथा सुनकर, नाम संकीर्तन सुनकर जहाँ कहीं चार भक्त बैठे हों मस्ती में प्रभु की महिमा का बखान करते हों तो गदगद भाव का जन्म होता है। आंखों से आंसू बहने लगते हैं रोमांच हो जाता है व्यक्ति इस जगत का हिस्सा नहीं रह जाता और किसी लोक में प्रवेश कर जाता है। अपूर्व अवसर का नाम ही सत्संग है मगर ये सब लक्षण दूसरों की पहचान के लिए नहीं है ये तो स्वयं अपने को पहचानने के लिए है। ये हमारी अंर्तयात्रा के सुगम उपाय हैं हमें स्वयं अपने को पहचानना है हमें किसी दूसरे व्यक्ति को पहचानकर क्या करना है? हमें तो स्वयं अपनी परख करनी है कि हमारी अंर्तयात्रा शुरू हुई या नहीं हमारे अंदर भक्ति का आविर्भाव हुआ या नहीं।

ये लक्षण शुरू हुए कि प्रीति की पहली पहल घटना शुरू हुई अंकुरण हुआ प्रीति का इन्हीं के सहारे यात्रा शुरू होती है। जब हमारे अंदर एकाध बीज पड़ जाता है तभी हमारी अंर्तयात्रा प्रारंभ होती है। धीरे–धीरे प्रभु का यही प्रेम विरह में बदल जाता है। जितनी जितनी परमात्मा की तरफ हमारा मन खिंचता है उतनी ही विरह की भावदशा बढ़ती जाती है जितने

उसके नजदीक जाएँगे उतने ही उन्हें पाने की आकांक्षा जगेगी, क्योंकि पहले तो हमने उन्हें जाना ही नहीं अब जैसे-जैसे करीब आएँगे झलक मिलेगी वैसे-वैसे लगेगा कितनी दूरी है। भक्त के अंदर विरह विराट होकर प्रकट होता है। प्रतिपल भक्त एक धधकता हुआ अंगारा हो जाता है। प्रतिपल एक ही अभिप्सा, एक ही भूख होती है। प्रभु से मिलन हो जाए जितनी यह लालसा बढ़ती है। उतने ही हम परमात्मा के करीब आते हैं जिस दिन प्यास पूर्ण हो जाती है उसी दिन प्रार्थना पूर्ण हो जाती है। प्यास ही प्रार्थना है और प्यास की परिपूर्णता ही परमात्मा का मिलन बन जाती है जब हमारा रोम-रोम उन्हें पुकारने लगे उनसे मिलने की प्यास के अतिरिक्त कुछ न बचे ऐसी तीव्रता हो बस उसी तीव्रता में घटना घट जाती है। भक्त फिर केवल इसलिए जीता है कि थोड़ी देर और परमात्मा का गुणगान कर ले थोड़ी देर और गीत गा ले थोड़ी देर और प्रार्थना कर ले उसके जीवन का एक ही लक्ष्य रह जाता है।

भक्त के पास सिर्फ भाव है चढ़ाने को तदीयता का भाव। तदभाव भक्त अपने को मिटाता है और भगवान को आमंत्रित करता है। रो-रोकर भक्त अपने अहंकार को गलाता है अपने "मैं" को विदा करता है जिस दिन अपने से खाली हो जाता है उसी दिन से परमात्मा से भरने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

उस अविनाशी परम पुरुष को प्राप्त करने का यह बड़ा सुगम मार्ग है जो हमें प्रभु के पास निश्चित ही ले जाता है सिर्फ प्रभु के लिए रोना अगर हम रोए तो भी हमारे आंसू हंस रहे हैं रोने में भी ऐसा लगे कि हमारे ये आंसू गीत और प्रार्थना बन जाए, हमारा सम्पूर्ण जीवन के परम महोत्सव में डूब जाए। प्रेम के विषय में कहा भी गया है- **"अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।।"** प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है।

भगवान श्यामसुंदर ने अनन्य प्रेम के साधन का स्वरूप और फल गीता में बताते हुए कहा-

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

निरंतर मुझमें मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जानते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरंतर संतुष्ट होते हैं एवं मुझ वासुदेव में ही निरंतर रमण करते हैं उपर्युक्त प्रकार के ध्यान आदि द्वारा मुझमें निरंतर रमण करने वाले और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं तत्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भगवत प्रेम अनिर्वचनीय है भगवत प्रेम मानवी चेतना की पकड़ में आता तो है पर बहुआयामी होने के कारण बुद्धि और विवेक के परे चला जाता है अनिर्वचनीय होते हुए भी भगवतप्रेम दिव्य और अदिव्य सभी धरातलों को परिप्लावित कर सकता है। प्रेम का स्वरूप तो केवल भक्तों की हृदय गुफाओं में छिपा रहता है प्रेम या भक्ति कहने सुनने की नहीं अपितु लोक परलोक के अर्पण की तैयारी है वहीं प्रेय का दर्शन हो सकता है।

भ्रम से ब्रह्म साक्षात्कार

डा. जे. **पी. शर्मा,**

पौंटा साहिब जिला सिरमौर हिमाचल प्रदेश

मनुष्य जन्म से मृत्युपर्यन्त भ्रम में जीता है। अज्ञानतावश अपनी ही परछाई से डरता है तो कभी रात्रि के अंधेरे में पेड़ों की हिलती डालियों को भूत समझकर भ्रमित हो जाता है। कभी रस्सी को सर्प समझकर भयभीत हो जाता है। भ्रमित होने की आदत कमजोर इच्छाशक्ति वालों में प्रायः अधिक पाई जाती है। भ्रमित रहने से मनोबल कमजोर हो जाता है तथा विभिन्न प्रकार के भ्रमों से मनुष्य ग्रसित रहने लगता है। हठपूर्वक भ्रम को परखने से वास्तविकता का आभास होता है तो बलात अपने को ठगा–सा समझने लगता है। भ्रमित व्यक्ति शंकालु बन जाता है तथा तनाव युक्त रहता है। भ्रम को दूर करके आदमी को आत्मिक शांति मिलती है। संसार में प्रायः पांच तरह के भ्रम पाये जाते हैं। मनुष्य अगर अपने शंकालु चित्त से इन भ्रमों को दूर कर दे, तो वह ब्रह्मसे साक्षात्कार करने में सफल हो सकता है। ये भ्रम निम्न प्रकार के होते हैं।

1. **जीवात्मा से परमात्मा में अन्तरता है**– यह मनुष्य का पहला भ्रम है। जब हम दर्पण के सामने खड़े होते हैं तो हमारा प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखाई देने लगता है। हम में तथा हमारे प्रतिबिम्ब में समानता दिखाई देती है। जब हम दर्पण को हटा देते हैं तो हमारा अपना बिम्ब (शरीर) अकेला रह जाता है जो ठीक वैसा ही होता है जैसा कि दर्पण में दिखाई दे रहा था। भाव है कि दर्पण की माया मानें तो जीवात्मा तथा परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल मायारूपी दर्पण में है जिसे हम योग बल से दूर कर सकते हैं।

2. **हम आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता, सुख, दुःख इत्यादि मानते हैं**– यह हमारा दूसरा भ्रम है। स्फटिक बिलकुल साफ निर्लिप्त होता है परंतु जब इसे जपाकुसुम जो लालवर्ण का होता है के पास लाते हैं तो स्फटिक लाल रंग का प्रतीत होने लगता है पर वास्तव में स्फटिक लाल नहीं है, वैसे ही देह, इन्द्रियां आदि कार्यकरण के संघात से, सन्निधान से आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि की प्रतीति होती है। अतः आत्मा अकर्त्ता, अभोक्ता, असुखी, अदुःखी, नित्य, एकरस, शुद्ध, बुद्ध, युक्त एवं सत्यस्वभाव है।

3. **शरीरत्रयसंयुक्त जीव तीनों शरीरों से सम्बद्ध है**– यह हमारा तीसरा भ्रम है। घटाकाश तथा मठाकाश के दृष्टान्त से यह निवृत्त होता है। जैसे घट और मठ में रहता हुआ घटाकाश और मठाकाश घट तथा मठ से सम्बद्ध नहीं होता, वैसे ही तीनों शरीरों में रहता हुआ भी अन्तरात्मा उनसे सम्बद्ध नहीं होता, वह असंग ही है।

4. जैसे बीज आदि उपादान कारण अंकुर आदि उत्पन्न करने में स्वयं अवश्य विकारी होता है, वैसे ही शुद्ध एकरस परब्रह्म जगदरूप कार्य को उत्पन्न करता हुआ वह

जगत्कारण विकारी है— यह चौथा भ्रम है। कनक, कुण्डलादि के दृष्टान्त से वह भी निवृत्त हो जाता है। जैसे कुण्डल, केयूर आदि कार्यरूप में परिणत होता हुआ भी सुवर्णस्वरूप से कभी भी विकृत्त नहीं होता है। वैसे ही परब्रह्म परमात्मा कार्यरूप में परिणत होता हुआ भी स्वरूप से विकारी नहीं होता।

5. जैसे अपने कारण तन्तु से पृथक होकर पटरूप कार्य भी सत्य है। वैसे ही अपने कारण ब्रह्म से पृथक होकर जगत भी सत्य है—यह हमारा पाँचवां भ्रम है। रस्सी—सर्प के उदाहरण से वह भी निवृत्त हो जाता है। जैसे अविद्या द्वारा रस्सी में उद्‌भावित सर्प अपने कारण रस्सी से पृथक होकर सत्य नहीं है, वैसे ही अविद्या द्वारा परब्रह्म परमात्मा में उद्‌भावित यह विश्व भी उससे पृथक होकर सत्य नहीं है।

अतः हमें प्रयासरत होते हुये उपरोक्त पाँचों भ्रमों से सर्वदा सचेत रहना चाहिये। व्यर्थ के भ्रमों के फेर में न पड़कर सद्‌गुरु भगवान द्वारा बताये गये योग मार्ग का अनुसरण करते रहें तभी भ्रम रूपी द्वन्दों से छुटकारा पाया जा सकेगा। भ्रमों के चित्त से हटते ही ब्रह्मसाक्षात्कार संभव है।

श्री सद्‌गुरु चरणों में समर्पित

प्रेषक— वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

कर, कमलों, से अभयदान हर क्षण गुरुवर देते हो।
श्रद्धा से जो नर-नारी आवें, प्रभु अपनी शरण में लेते हो।।
अमृतमय, ओजस्वी वाणी, गुरुदेव आपकी संजीवन मूरि।
उत्साह बढ़ता प्रभु चरणों में श्रद्धा सुमन चढ़ाने को।।
गुरुदेव दर्शन की लालसा जागी; श्री राम लाल गुण गाने को।
योग साधना में अविरल भक्ति निश दिन बढ़ता जाता है।।
हो नटनागर नर – तन धारी योगेश्वर लीला धारी।।
बाल समर्पित प्रभु चरणों में जय हो—जय हो योगेश्वर अविनाशी।
अज्ञेय परम् पुरुष का अवतरण दिवस सब को मंगल मय हो।।
सिद्ध योग की सफल साधना प्रतिक्षण मंगल मय हो।
श्री राम श्री कृष्ण तुम्हीं माधव मदन मुरारी।
विघ्न हरण, प्रथम पूज्य गुरुवर, अखिलेश्वर अविनाशी।
कारण करण हरण दुःख भंजन अमित रूपसुखराशी।।
कलियुग में प्रभु व्यापक बन, गीता* का सन्देश दिया।
"योग ही दिव्य जीवन है," यह महामन्त्र उद्‌घोष किया।।
विजयादशमी महापर्व पर गुरुवर सब मिल अभिनंदन करते।
श्री चन्द्रमोहन, गुरुदेव आपकी जय हो, जय हो, जय हो।।

मेरे गुरुवर मेरे सद्‌गुरु, सबका बेड़ा पार करो !

मेरे गुरुवर मेरे सद्‌गुरु
सबका बेड़ा पार करो
दीन दु:खी जो आये शरण में
उसका बेड़ा पार करो
मेरे गुरुवर——

कान्हा की मुरली में बाजत
सप्त स्वरों का ध्यान करो
मेरे मालिक मेरे गुरुवर
सबका बेड़ा पार करो
मेरे गुरुवर——

अलख निरंजन रूप तुम्हारा
नटवर के संग रास करो
सत्य सनातन मेरे गुरुवर
मोहन का कल्यान करो
मेरे गुरुवर——

गोवर्धन गिरिराज तलहटी
नित्य कृष्ण संग वास करो
चन्द्र मोहन हैं गुरुवर मेरे
राम–चन्द्र का ध्यान करो
कृष्ण सखा की बात वहीं है
नित्य नयी पहिचान करो
मेरे गुरुवर——

कृष्ण–चन्द्र ये सम हैं दोनों
नित्य इन्हें प्रणाम करो
प्रात: होत उठ धाओ इनको
अपना भी कल्याण करो
मेरे गुरुवर——

आशा–तृष्णा पास न आवे
ऐसा कुछ विधान करो
मेरे गुरुवर——

जनम–जनम की मैली चादर
इसका भी कुछ ध्यान करो
शक्ति पात से उज्ज्वल कर दो
मोहन का कल्यान करो
अधम–अनाड़ी–पापी जग में
इनका बेड़ा पार करो
मेरे गुरुवर मेरे सद्‌गुरु——
सबका बेड़ा पार करो

मोहन स्वरूप
गोवर्धन

सबसे बड़े देव – मेरे श्री गुरुदेव

केशव देव उपाध्याय

''जब भी तुम मेरे आगमन वाले स्थान पर जाना, तो मुझे प्रणाम करने से पहले, अपने गुरुदेव को अवश्य–अवश्य प्रणाम कर लेना''

उपरोक्त शब्द साक्षात् काली माँ (बड़ी मातादायी, अर्थात् बड़ी चेचक की बीमारी से जन्म–मृत्यु से संघर्ष कर रहे एक बारह वर्षीय बालक पर सवार माँ काली) ने हमारी एक गुरु बहन को तब कहा था, जब वह बालक को देखने वालों के साथ गयी, हमारी बहन ने उन्हें प्रणाम निवेदित किया। प्रभु की महान महिमा का वर्णन करने वाली इस घटना का वर्णन निम्न प्रकार है।

उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के जनकपुर ग्राम की निवासिनी हमारी एक गुरुबहन का नाम श्रीमती आशा पाण्डेय है। इनका मायका बलिया जनपद में ही बलिया से बासडीह जाने वाली सड़क पर स्थित मझौली ग्राम में है। आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व श्रीमती आशा देवी ने अपने पतिदेव के साथ, जगत नियन्ता, कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से योग दीक्षा ग्रहण की है एवं दीक्षा के उपरान्त इनके यहाँ नित्य प्रातः सांय श्री योगेश्वर द्वय का आरती–पूजन एवं मंत्र जप का कार्य चल रहा है। श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में इनकी तथा इनके परिवार के सभी सदस्यों की अनन्य श्रद्धा है। इनके पतिदेव सरकारी विभाग में नौकरी करते हैं तथा इनका भरा–पूरा परिवार, आनन्दकन्द श्री सद्‌गुरुदेव भगवान की कृपा से सानन्द, सुखमय जीवन यापन कर रहा है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व अपने मायका वालों के किसी मांगलिक कार्य में सम्मिलित होने श्रीमती आशा देवी मझौली गाँव गयी हुई थी। अप्रैल–मई का महिना था। मांगलिक कार्य की समाप्ति के बाद, जब ये वापस आने को तैयार हुयीं तो पता चला कि इनके मायके के पारिवारिक जनों में एक बारह वर्षीय बालक को बड़ी चेचक (बड़ी मातादायी) निकली हुयी है। श्री मती आशा देवी ने अपने पिताश्री से जब अपने ससुराल जाने की बात की तो उन्होंने, ऐसे समय में जाने से स्पष्ट मना कर दिया एवं कहा कि, केवल चार–पांच दिन की बात है, रूक जाओ। ऐसी स्थिति में यात्रा करना पूर्ण रूपेण निषेध किया गया है।

मात्र तीन दिन के अन्दर, बालक जिसे बड़ी चेचक निकली थी, इस रोग से अधिकाधिक शारीरिक कष्ट एवं असहाय पीड़ा से कराहने लगा। उसके शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं बचा, जिस अंग पर चेचक न निकली हो। उसे इस रोग से आराम दिलाने हेतु एक साधिका जिसे काली माँ की सिद्धि थी, लड़के के परिवार वालों ने बुलाया। माँ काली

सिद्ध महिला आयी एवं उसके बैठने के लिये, पीड़ित बालक के पास आसन बिछाया गया था, उस पर वह बैठ गयी। थोड़ी देर के लिये उसने कुछ मंत्र जप किया एवं फिर उसके बाद उसके शरीर पर काली का आवेश हो गया। आधे घन्टे तक उसने उपचार किया एवं बारह वर्षीय बालक के असहनीय कष्ट में कुछ कमी आयी। उसके बाद उसने कहा कि अब मैं लगातार तीन दिन प्रातः सायं आकर इसके रोग निवृत्ति हेतु पूजा करुंगी एवं बालक की मृत्यु अब इस रोग से इस समय नहीं होगी। उसके आने के पूर्व बालक असहनीय कष्ट में था एवं पीड़ा के कारण कराह रहा था। बालक के पारिवारिक जनों ने भी राहत का अनुभव किया।

बालक के उपचार के लिये साधिका जब उस बालक के घर आयी तो उसे, उसके उपचार की विधि एवं माँ काली का आवेश देखने के लिये लगभग दस महिलायें उस घर पर आ गयी थी। उसमें हमारी गुरुबहन श्रीमती आशादेवी एवं उनकी आदरणीय माता जी भी थी। बालक का उपचार करने के बाद, काली के आवेश युक्त साधक महिला, वहाँ उपस्थित महिलाओं की तरफ मुखातिब हुई एवं उसने कहा कि तुम लोगों को जो कुछ भी पूछना हो, हमसे पूछ लो। उपस्थित सभी महिलाओं ने अपने भविष्य में होने वाले कार्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की एवं अपने अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये आशीर्वाद एवं वरदान मांगा।

हमारे गुरुबहन की माता जी, अपने बेटी सौ. श्रीमती आशादेवी को कई बार इशारा किया कि काली माँ से कुछ तुम भी मांग लो। परंतु श्रीमती आशादेवी आवेशित माँ काली से हाथ जोड़कर कुछ मांगने की प्रार्थना नहीं कर सकीं। श्रीमती आशादेवी का माता जी की यह हरकत देखकर, आवेशित माँ काली ने उनसे कहा, "अरे, क्यों उसे हाथ जोड़कर मांगने के लिये बाध्य कर रही हो। तुम्हें शायद इस रहस्य की जानकारी नहीं है कि इसके ईष्ट (श्री गुरुदेव) सम्पूर्ण चर–अचर ब्रह्मांड के स्वामी है।" आगे माँ काली के आवेश में उस साधिका ने कहा, "इसे किसी भी लौकिक या पारलौकिक कार्य के लिये किसी और देवी, देवता से प्रार्थना करने की कतई जरूरत नहीं है।"

इसके बाद उस आवेशित साधिका ने हमारी गुरुबहन श्री मती आशादेवी से कहा कि तुम्हारी माता जी तुमसे खेत सम्बन्धी मुकदमें के संबध में प्रार्थना करने के लिये कह रही थी, तो सुनो, आज से तीन महिने बाद उस मुकदमें में फैसला होगा एवं उसमें तुम्हारी विजय होगी। दूसरी बात जो तुम पूछना चाहती हो, वह यह है कि तुम्हारे पतिदेव, जो अभी सरकारी नौकरी में अस्थायी (टेम्परेरी) है, स्थायी (परमानेन्ट) कब तक होंगे, इसके संबध में, मैं यह बतलाना चाहती हूँ कि इसमें अभी वर्षों का समय लग सकता है। परंतु निराश या उदास होने की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है। उनकी नौकरी अवश्य–अवश्य परमानेन्ट हो जायेगी। आगे साधिका ने श्रीमती आशादेवी की माता को संबोधित करके कहा, "देखो! स्वयं काल भी इसकी तरफ तिरछी नजर से नहीं देख सकता, इसके दुश्मनों एवं बैरियों की क्या मजाल कि इसका कुछ अहित कर सके।"

तत् पश्चात् उस आवेशित साधिका ने श्रीमती आशादेवी से कहा कि तुम्हारे श्री गुरुदेव की शक्ति अपरम्पार है। उनकी शक्ति कितनी है, यह आभास किसी भी देवगण में नहीं है। अतः मेरी कही बातों को शत् प्रतिशत सत्य मानकर, जैसा इस समय कर रही हो, वैसी ही आरती–पूजा–ध्यान नित्य नियम से किया करो। यदि तुम ऐसा करती रही तो तुम्हारा लोक एवं परलोक दोनों ही अवश्य ही सुखमय रहेगा, ऐसा मेरा मत है। साधिका ने कहा कि यदि कभी तुम्हारे घर में हमारा आगमन होता है (अर्थात् तुम्हारे घर के किसी भी सदस्य को बड़ी या छोटी चेचक निकलती है) तो तुम्हें घबराने या डरने की बात बिल्कुल ही नहीं है। प्रायः जिस घर में मेरा आगमन होता है, लोग डर कर मेरी पूजा करते है। तुम बिल्कुल निडर रहना। अपना नैतिक पूजा का कार्यक्रम बिल्कुल मत बदलना या छोड़ना। पहले अपने आराध्य ईष्ट का खूब विधि–विधान से आरती पूजा एवं ध्यान कर लेना। उनकी पूजा से खाली होने के बाद, तब हमारी पूजा करना चाहो, तो कर सकती हो। यह नियम विरुद्ध है कि घर में उपस्थिति बड़ी शक्ति की पूजा–आराधना छोड़कर हमारी पूजा की जाये। इतना अवश्य ध्यान रखना कि मेरा निवास स्थान बिल्कुल स्वच्छ एवं पवित्र रखा जाये। यह बात कभी नहीं भूलना। इतना कहने के बाद आवेशित महिला ने कहा कि अब मैं जा रही हूँ एवं उसके अगले क्षण वह सामान्य हो गयी। यह रहा माँ काली की दृष्टि में हमारे गुरुदेव का स्थान। अब प्रसंग को निम्न पंक्तियों के साथ विश्राम देते हैं:–

जिस दिल में सवाँई वाले नहीं, श्मसान उसे हम कहते हैं।
जो भूल गया योगेश्वर को, नादान उसे हम कहते हैं।।
दुनियां में करोड़ों–अरबों में, धनवान बहुत ही रहते हैं।
गुरुमंत्र का जिसके पास है धन, धनवान उसे हम कहते हैं।।

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक महोत्सव

'श्री योग साधन आश्रम' रेलवे रोड ऋषिकेश का वार्षिकोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी, नवमी, दशमी तदनुसार शुक्रवार, शनिवार एवं रविवार दिनांक 11, 12 एवं 13 जून 2008 को बड़ी धूमधाम से मनाया जायेगा। उत्सव में उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा योग सिद्धान्तों पर उत्तमोत्तम प्रवचन, रुचिकर संगीत, योग साधनों का प्रदर्शन एवं श्री हरिनाम संकीर्तन आदि बहुत ही रोचक कार्यक्रम रहेंगे। अतः आप भी अपने इष्ट–मित्रों, बाल–गोपालों सहित उत्सव में भाग लेकर सत्संग से लाभ प्राप्त करें। अपने साथ के सभी गुरु भाईयों को इसकी सूचना अवश्य दें।

निवेदक

आचार्य पूर्णचन्द्र शर्मा

मो. 9412009345 फोन: 0135–2436697

कृष्ण काले बंसरी वाले दे दो गीता ज्ञान

– जगदीश राए बंसल 'अधम' –

कृष्ण काले बंसरी वाले दे दो गीता ज्ञान
प्रभू जी मैं शरण पड़ा ।।

तुम ही ब्रह्म, तुम ही विष्णु– साक्षात् महादेवा हो।
सुर नर मुनि जन करें आरती, सब देवन के देवा हो।
तुम ही अर्जुन तुम ही कृष्ण, मात यशोदा के लाल ।। प्रभू जी

ज्ञानी के ज्ञान तुम्ही ध्यानी के ध्यान तुम्हीं।
रवि तुम्हीं और चन्द तुम्हीं, तीन लोक में प्रकाश तुम्हीं।
सगुण निर्गुण कण–कण में व्यापक, ना जानू मैं अनजान ।। प्रभूजी

सब जीवों के हृदय वासी आदि, मध्य और अन्त तुम्हीं।
सब देवन में इन्द देव हो यमराज और कुबेर तुम्हीं।
समर्पण आगे झुक जाते हो फिर भी हो निष्काम ।। प्रभू जी

सब रूद्रों में शिवजी तुम्हीं शेषनाग और पाताल तुम्हीं
ऐरावत और गरुड़ तुम्हीं कर्म योगी का कर्म तुम्हीं।
आत्मरूप हो सब जीवों में योग क्षेम के भण्डार ।। प्रभूजी

रस, रूप और गन्ध तुम्हीं तीनों गुणों का सार तुम्हीं।
बल बुद्धि और तेज तुम्हीं कामधेनु और कुबेर तुम्हीं।
श्रद्धा भक्ति तप बल तुम हो, हे निर्बल के बलराम ।। प्रभूजी

वेदों में तुम सामवेद हो, नदियों में तुम गंगा हो
चारों धाम के अधिपति हो सिद्धगुफा के बाबा हो।
विराट रूप अधम को दिखा दो हे अर्जुन के रथवान ।। प्रभू जी

श्री प्रभुजी की जयन्ती व श्री रामनवमी महोत्सव धूमधाम से सम्पन्न

परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की 120 वीं पावन जयन्ती **रामनवमी योग महामेला** के रूप में 12, 13 व 14 अप्रैल को धूमधाम से मनाया गया। अबकी बार इस उत्सव को मण्डी हिमाचल प्रदेश के गुरुभाईयों के सहयोग से मनाया गया। उत्सव में उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों से हजारों गुरुभाई-बहिनों ने आकर अत्यन्त हर्ष एवं उल्लास के साथ उत्सव का आनन्द लिया। 12 तारीख को प्रात: 9:50 बजे श्री प्रभु जी की आरती के साथ उत्सव का शुभारम्भ हुआ तत्पश्चात श्री गुरुगीता का पाठ किया गया। तत्पश्चात श्री प्रभुजी की परम सिद्ध अमर गुरु के रूप में महिमा का वर्णन किया गया। प्रवचन कर्त्ताओं में डॉ. विजय सिंह व आचार्य दासलाल थे। दोपहर पश्चात महिला संकीर्त्तन धूम धाम से अनेक मण्डलियों के द्वारा सम्पन्न हुआ। रात्रि को भी 12 बजे तक भजन चलते रहे। दिनांक 13 अप्रैल को प्रात: 9:50 बजे श्री प्रभु जी की आरती हुई। तदनन्तर गुरुगीता का पाठ सम्पूर्ण हुआ। विद्वान वक्ताओं ने गुरुदेव की महिमा तथा अलौकिक कृपाओं का वर्णन किया। गुरुदेव की कृपा से सम्बन्धित संस्मरण सुनाये गये। वक्ताओं में भाई सोमदत्त शर्मा, देवेन्द्र सिंह, पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री तथा पूर्णचन्द्र शर्मा ऋषिकेश वाले थे।

दोपहर बाद 5 बजे योग आसनों तथा जीवन तत्त्व साधन के अलौकिक क्रियाओं के साथ-साथ षट कर्म के रूप में नेति, धोति, कपाल भाति, कुञ्जल, न्यौली आदि षट कर्म की क्रियाओं का प्रदर्शन हुआ। भिवाना से आये पूर्व ब्रह्मचारी राजकुमार ने प्राणायाम तथा हठयोग के बल से अद्‌भुत क्रियाओं का प्रदर्शन किया। उन क्रियाओं में आंख से 2 सूत की सरिया को मोड़ देना, हाथों से कांच को पीस कर आटा के मानिन्द बना देना। अपने छाती के ऊपर बहुत बड़े पत्थर को तुड़वाना आदि क्रियायें सम्मिलित थीं।

दिनांक 14 को श्री रामनवमी महोत्सव का पावन दिन आया। प्रात: 9:50 बजे की आरती के पश्चात श्री महाप्रभु जी का पूजन प्रारम्भ हुआ जो सायं चार-पांच बजे तक चलता रहा। 14-15 हजार श्रद्धालुओं ने आकर श्री प्रभु जी की आरती पूजन व नमन किया। दोपहर से ब्रह्म भोज का कार्यक्रम चला। तत्पश्चात सामूहिक भंडारे का कार्यक्रम 5-6 बजे तक निरन्तर चलता रहा। साधकों की भीड़-भाड़ पिछले वर्ष की भाँति ही रही। 15 तारीख से गुरु भाई-बहिन अपने-अपने गन्तव्य की ओर चलने लगे। इस प्रकार से यह महोत्सव योग महामेला के रूप में अत्यन्त आनन्द एवं हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ।

योग क्या है?

– डा. राजकुमारी त्रिखा –

वैज्ञानिक प्रगति के आधुनिक युग में मानव–जीवन अत्यन्त जटिल हो गया है। एक ओर वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से अधिकांश श्रमसाध्य कार्य सरलतापूर्वक व सुचारू रूप से सम्पन्न करना सम्भव हो गया है; तो दूसरी ओर नवीन वैज्ञानिक–अनुसन्धानों के फलस्वरुप प्रतिदिन नूतन उपभोग्य पदार्थ बाजारों में उपलब्ध हो रहे हैं, जिन्हें प्राप्त करने की लालसा प्रत्येक व्यक्ति के मन में बनी रहती है। आज प्रत्येक मनुष्य स्वयं को समाज में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील धनवान् तथा विद्वान् के रूप में प्रदर्शित करना चाहता है। अपने कार्यक्षेत्र में भी अत्युत्तम तथा सर्वोच्च व गौरवपूर्ण पद प्राप्त करना प्रत्येक बुद्धिजीवी की मनोकामना होती है। निरन्तर प्रयत्न करने के पश्चात् एक पदोन्नति प्राप्त होती है। तभी उपलब्ध पद से भी अधिक प्रतिष्ठित व उच्च पद प्राप्त करने का स्वप्न, व्यक्ति के नयनों में समा जाता है। अभिलाषाएँ तो मन के सङ्कल्पों के साथ उठती व विलीन होती रहती हैं। सभी इच्छाएं पूर्ण नहीं हो पातीं। अपूर्ण इच्छाएँ, कुण्ठा, झुंझलाहट अवसाद व निराशा को जन्म देने लगती हैं। दैनिक जीवन में शारीरिक व्यायाम की कमी के कारण भी अनेक रोगों का आक्रमण होता है। भौतिक उन्नति की उपलब्धियां भी मानसिक शान्ति नहीं दे पातीं। आक्रोश व निराशा से क्षुब्ध मानव काम–क्रोधादि आन्तरिक रिपुषड्वर्ग के प्रहारों से जर्जरित होकर अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है–यथा उच्च/निम्न रक्तचाप, हृदयरोग, मानसिक–रोग, पाचन–तन्त्रसम्बन्धी रोग, वायुविकार, मेरु–दण्ड–सम्बन्धी रोग (सरवाइकल, स्पोण्डिलाइटिस, लम्बर का दर्द), तथा मधुमेह इत्यादि। काम क्रोध, लोभ मोह इत्यादि दूषित मनोभावों को आन्तरिक रिपुषड्वर्ग कहते हैं। अन्य शत्रु तो हमें बाहर से हानि पहुंचाते हैं, परन्तु ये रिपुषड्वर्ग तो सदा हमारे मानस में ही रहकर हमें अहर्निश हानि पहुंचाते हैं। काम, क्रोध, चिन्ता, भय, निराशा आदि भावनाओं का उद्रेक हमारे अन्तःस्रावी नलिकाविहीन ग्रन्थितन्त्र से निकलने वाले हारमोन्स के स्रावों को असन्तुलित कर देता है। फलस्वरुप थाइराइड, पैनक्रियाज, पिच्यूटरी, पीनियल एड्रिनल व सर्विक्स आदि Endocrine glands से निःसृत होने वाले हारमोनल स्राव, शरीर की आवश्यकता से अधिक अथवा न्यून मात्रा में निकलने लगते हैं। तत्पश्चात्–तत्तत्–हारमोन की न्यूनता अथवा अधिकता से उत्पन्न होने वाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

आधुनिक आयुर्विज्ञान के परीक्षणों से भी हारमोनल स्रावों के निस्सरण पर

मनोभावों के प्रभाव की पुष्टि होती है। आल इन्डिया इन्सटीट्यूट ऑफ मैन्टल हेल्थ की न्यूरोफार्मोकोलोजिस्ट कंडेसपर्ट ने अनेक परीक्षणों के उपरान्त निष्कर्ष निकाला है, कि शरीर व मस्तिष्क में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं, जिन्हें न्यूरोपेप्टाइड्स कहते हैं। इनका व्यक्ति की भावनाओं व सम्वेदनाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ऋतु–प्रतिकूल, मनमाना आहार–विहार भी अनेक रोगों को जन्म देता है। इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शारीरिक व मानसिक रोग हमारी विकृत मानसिकता तथा अनुचित ऋतुचर्या के कारण उत्पन्न होते हैं। यदि उचित सावधानी बरती जाए तो हम बहुत से रोगों से बच सकते हैं। योगसाधना की इस दृष्टि से महती उपादेयता है। इस सन्दर्भ में हम निम्न विषयों पर विचार विमर्श करेंगे।

क. योग,एक परिचय

ख. योग शब्द का अर्थ

ग. योग व अन्य दर्शन तथा साधनाप्रणालियाँ

(क)

योग, एक परिचय

सांसारिक–दु:खानल, सन्तप्त मानवजाति को चिराभिलषित शान्तिरूपी अमृतरस का पान कराने में योगसाधना आज भी समर्थ है। योगसाधना की प्रक्रिया में यम–नियमों का पालन करने से चित्त निर्मल बनता है। आसनों के अभ्यास से शरीर नीरोग व बलवान् बनता है। प्राणायाम द्वारा अनेक रोगों का नाश होता है। इन सभी योगांगों की साधना से कुछ सिद्धियाँ व शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। प्रत्याहार की साधना से साधक का मन विषयों से पराङ्मुख होकर अन्तर्मुखी हो जाता है, तथा धारणा, ध्यान व समाधि की योग्यता प्राप्त होती है। योग के इन आठों अङ्गों का विस्तृत विवेचन हम इसी पुस्तक में यथास्थान करेंगे। यह निश्चित है, कि योगसाधना साधक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही विकसित करके निरोग व प्रखर बनाती है। यह सभी दु:खों का नाश करती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं– इस योग नामक प्रक्रिया को दु:खों के संयोग (प्राप्ति) से वियोग कराने वाला समझो। वस्तुत: दु:खों का विनाश तो योगसाधना का आनुषङ्गिक फल है। इसका अन्तिम लक्ष्य तो आत्मदर्शन ही है। याज्ञवल्क्यस्मृति 1.8 में भी कहा गया है– **अयं तु परमो धर्म: यद्योगेनात्मदर्शनम्।** अर्थात् योगाभ्यास द्वारा आत्मदर्शन करना मानवजीवन का परमधर्म है। प्रश्न है– योग क्या है?

(ख)

योग शब्द का अर्थ

युज् में घञ् प्रत्यय लगाकर योग शब्द की निष्पत्ति होती है। रुधादिगणीय युज्, युतौ

का अर्थ है, जोड़ना, मिलाना, जुए में जोतना, सम्पन्न करना, प्रयोग करना, नियुक्त करना, सुव्यवस्थित करना इत्यादि। दिवादिगणीय युज् समाधौ का अर्थ है, नियुक्त करना, लगाना, जैसे मन को किसी ध्येय विषय पर केन्द्रित करना। अमरकोष में योग शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं– सन्नहनः, उपायः, ध्यानम्, संगतिः, युक्तिः इत्यादि, अर्थात् कवच धारण करना, उपाय, किसी विशेष वस्तु अथवा व्यक्ति का ध्यान करना, दो वस्तुओं का संयोग, व कार्यसिद्धि में सहायक कोई युक्ति– ये सभी योग कहलाते हैं।

इन सब रूढ़ अर्थों का मूल अर्थ है– दो पदार्थों का संयोग, मिलन, किसी अभीष्ट फलप्राप्ति के उद्देश्य से विविध कारणों व करणों का संयोग, यथा– दो औषधी का योग, योद्धा का कवच व शस्त्रास्त्रों से संयोग। ज्योतिष् शास्त्रानुसार विशेष नक्षत्रों का विशेष वारों (सप्ताह के सात दिन) से योग होने पर विशिष्ट योग बनते हैं– जैसे रविवार का हस्त नक्षत्र से सम्बन्ध होने पर सर्वार्थसिद्धि योग बनता है।

इन अर्थों के अतिरिक्त चित्त का ध्येय विषय के साथ संयोग, एवं अन्ततः जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग भी योग है। भगवान पतंजलि ने योगसूत्र में चित्तवृत्तियों के नितान्त रुक जाने को योग कहा है। प्रारम्भ में साधक शास्त्रनिर्दिष्ट योगविधि से अपने चित्त को किसी लक्ष्यविशेष पर एकाग्र करने का प्रयास करता है। उस समय उसका चित्त पुनः पुनः लक्ष्य से भटक कर किसी अन्य विषय की ओर चला जाता है। पुनः पुनः तथा निरन्तर अभ्यास द्वारा चित्त की चंचलता कुछ कम होती है तथा क्षणभर के लिये, चित्तवृत्तियाँ नितान्त रुक जाती हैं। तब उसका चित्त ध्येयविषयाकार हो जाता है। यही योग की प्रारम्भिक अवस्था है। अभ्यास के साथ–साथ चित्तवृत्तियों के निरोध की अवधि बढ़ती जाती है। इस विषय की विस्तृत व्याख्या हम इसी पुस्तक में धारणा–ध्यान–समाधि–विषयक अध्याय में करेंगे।

(ग)

योग व अन्य दर्शन तथा साधना प्रणालियाँ

योगदर्शन, भारतीय दर्शनों की परम्परा में आस्तिक दर्शन माना जाता है। सांख्य, न्याय वैशेषिक, मीमांसा व वेदान्त अन्य अस्तिक दर्शन हैं। बौद्धदर्शन, जैनदर्शन व चार्वाक दर्शन नास्तिक दर्शन माने गये हैं।

योग दर्शन एक प्राचीन एवं सार्वभौम दर्शन है। यह सभी सम्प्रदायों एवं मतमतान्तरों के पक्षपात से रहित, एक व्यक्तिनिष्ठ साधनासापेक्ष दर्शन है, जो स्वयं साधना के अभ्यास द्वारा, तत्वदर्शन करने की राह दिखा कर व्यक्ति को मानवजीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाता है।

किसी भी सम्प्रदाय, धर्म, जाति, रंग व लिंग का व्यक्ति योगसाधना का अधिकारी है। विविध सम्प्रदायों में साधकों को तत्तत् सम्प्रदायसम्बन्धित देवता का ध्यान करने का

उपदेश दिया जाता है। अतः जिस सम्प्रदाय पर श्रद्धा होती है, उस सम्प्रदाय का अनुयायी उसी पूजापद्धति का अनुसरण करता है। परंतु योग साधना में साधक अपनी रुचि के अनुसार अपना ध्यान किसी भी बाह्य पदार्थ पर (जैसे चन्द्रमा, सूर्य, इष्ट देवता की मूर्ति आदि) अथवा अपने शरीर के किसी भी भाग जैसे हृदय, भृकुटिमध्य नासिकाग्र श्वास–प्रश्वास, हृदयगति आदि पर केन्द्रित कर सकता है। अतः किसी भी देवी, देवता अथवा सम्प्रदाय पर श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति योगसाधना का अभ्यास करता हुआ आत्मदर्शन करके अपना मानव जीवन सफल बना सकता है।

योगदर्शन एक सार्वभौम एवं व्यावहारिक दर्शन है। इसके व्यावहारिक पक्ष ने इसे लोकप्रिय बना दिया है। सभी भारतीयदर्शन अपने अपने मतानुसार तत्वमीमांसा करते हैं, परंतु योगदर्शन साधनामार्ग का निर्देश करके साधक को समाधि की अवस्था तक पहुँचा देता है। केवल अहं ब्रह्मास्मि, अथवा सोऽहं इत्यादि महावाक्यों के पठन–पाठन–मात्र से समाधिलाभ नहीं होता। इन आप्तवाक्यों से प्राप्त परोक्ष आत्मज्ञान, योगसाधना के विविध सोपानों को पार करके प्रत्यक्षानुभूति का विषय बनता है, तथा आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् साधक इन महावाक्यों की सत्यता अनुभव करता है। अतः समाधिप्राप्ति के व्यावहारिक मार्ग का निर्देश करने के कारण योगदर्शन आज भी लोकप्रिय है।

चित्तवृत्ति की एकाग्रता पर बल देने वाली योगसाधना, आज भी समाज में विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। जैनदर्शन में बहुचर्चित व लोकप्रिय प्रेक्षाध्यान–साधना तथा बौद्ध साधना पद्धति में बहु प्रचलित व समादृत विपश्यना साधना, योगसाधना के धारणा तथा ध्यान के समकक्ष हैं। इन सभी, पद्धतियों में चित्त को किसी विशेष लक्ष्य पर एकाग्र किया जाता है। इसी प्रकार भावातीत ध्यान इत्यादि अनेक ध्यानप्रक्रियाओं के मूल में चित्त की एकाग्रता परम आवश्यक तत्व है।

इस प्रकार, आज भी समाज में योग साधना विविध रूपों में अपनाई जा रही है। देश विदेशों के साधक इन पद्धतियों के द्वारा लाभ भी उठा रहे हैं। ध्यानाभ्यास के पूर्व व पश्चात् साधकों पर अनेक परीक्षण (EMG, EEG इत्यादि) किये गये हैं। इन परीक्षणों से स्पष्ट होता है कि साधक के शरीर व मन पर ध्यानप्रक्रिया का आश्चर्यजनक तथा अनुकूल प्रभाव पड़ता है। आज आधुनिक मेडिकल साइंस के पक्षधर अनेक डाक्टर भी योगसाधना के लाभों को स्वीकार करते हैं। यही कारण है, कि आज भी योगसाधना, भारतवर्ष व अन्य देशों में अनेक रूपों में प्रचलित है।

श्रीमद्भागवत महात्म्य

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

इस विपरीत घटना का ठीक कारण मैंने तुम्हें बता दिया।

भक्ति ने कहा–

हे महापुरुष! आपकी बातों से मुझे बहुत सहारा मिला है। कृपा कर आप यह और बतला दीजिए कि कलयुग को जब राजा परीक्षित ने पकड़ लिया था तो उसे छोड़ क्यों दिया? ऐसे अपवित्र कलयुग को तत्काल मार क्यों नहीं डाला? भगवान भी कलयुग के अत्याचारों को सहन करते रहते हैं, ऐसा क्यों? सभी वस्तुएँ सारहीन क्यों?

नारदजी बोले–

हे भद्रे! राजा परीक्षित ने दिग्विजय के दौरान एक स्थान पर कलयुग को पकड़ लिया था। भगवान के परम धाम जाते ही वह पृथ्वी पर आ धमका था। किंतु वह विनय करके परीक्षित की शरण में आ गया। नीतिपरायण राजा परीक्षित ने विचार किया कि शरण में आये हुये की हत्या नहीं करनी चाहिए। दूसरा, एक बढ़िया गुण उन्होंने उसमें यह पाया कि अन्य युगों में जो फल तपस्या, योग, ध्यान से नहीं मिलता वह कलयुग में केवल भगवद्भजन से मिल जाता है। दयावान राजा ने जीवों के हित को ध्यान में रखते कलयुग को मुक्त कर दिया।

राजा परीक्षित की पकड़ से मुक्त होने पर कलयुग के प्रभाव में आकर भूमण्डल की सभी वस्तुएँ सारहीन हो गई। ब्राह्मण मुट्ठीभर अन्न के लिए घर–घर जाकर कथा सुनाते हैं इससे कथा का महत्त्व जाता रहा। तीर्थ स्थानों पर दुराचारी नास्तिकों के रहने से तीर्थों का महात्म्य नष्ट हो गया। कामी, क्रोधी, लोभी मनुष्यों द्वारा तपस्या का ढोंग करने से तप का सारांश निकल गया। हे भक्ति! यह सब कलयुग के प्रभाव के कारण है इसमें और किसी का अपराध नहीं। कलयुग का यही स्वभाव है अतः भगवान भी इसकी करतूतों–उत्पातों को सहन करते रहते हैं।

भक्ति ने कहा–

हे देवर्षि आप धन्य हैं। आप जैसे सज्जनों के दर्शन से मनुष्य की सब मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं। भगवन! आप से थोड़ी शिक्षा पाकर प्रहलाद ने माया को जीता ध्रुव ने ध्रुवपद प्राप्त किया। मंगलमय ऋषि जी, आपको मेरा प्रणाम है।

नारदजी बोले–

हे भद्रे! तुम श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान करो, इसी से सभी दुख दूर हो जायेंगे।

द्रोपदी की लाज बचाने वाले श्रीकृष्ण कहीं चले नहीं गये हैं। भक्ति तुम तो श्रीकृष्ण की प्राणप्रिय हो। तुम्हारे बुलाने पर वह नीच के घर भी पहुँच जाते हैं। सत्य, त्रेता और द्वापर युगों में ज्ञान–वैराग्य मुक्ति के साधन थे परंतु कलयुग में तो केवल भक्ति से ही मुक्ति मिल जाती है।

सूतजी कहते हैं कि नारदजी के मुख से अपना महात्म्य सुनकर भक्ति को प्रसन्नता हुई।

भक्ति ने प्रेमपूर्वक कहा–

नारदजी आप धन्य है मुझ पर आपकी निश्चल प्रीति है। आप कृपा करके मेरे दोनों पुत्रों को सचेत कर दीजिए।

नारदजी ने भक्ति की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए ज्ञान–वैराग्य दोनों के कानों में बड़ी जोर से आवाज लगाते हुए कहा– 'हे ज्ञान–वैराग्य तुम झटपट जग जाओ।' किन्तु उन्होंने आंखें नहीं खोली। नारदजी को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपने परम गुरु गोविन्द जी का ध्यान किया। उसी समय आकाशवाणी हुई–

''ऋषिजी! तु म चिन्ता छोड़ो, तुम्हारा उद्योग सफल होगा। इसके लिए तुम पुण्य कार्य करो। साधु–महात्मा लोग तुम्हें बतला देंगे कि कौन सा पुण्य करना चाहिए। उस पुण्य के करते ही ज्ञान–वैराग्य सचेत हो जायेंगे। इनका बुढ़ापा दूर हो जायेगा और सर्वत्र भक्ति का प्रसार हो जायेगा।''

सूतजी कहते हैं कि ज्ञान–वैराग्य को वहीं छोड़ कर नारदजी उपाय बताने वाले महात्माओं को तीर्थों में जाकर ढूंढने लगे। जब कोई ऐसा महात्मा नहीं मिला जो ज्ञान–वैराग्य के दु:ख को दूर करने का उपाय बता सके। तब कार्य सिद्ध करने के उद्देश्य से नारदजी तप करने बदरिकाश्रम पहुँचे। वहाँ उन्होंने तेजस्वी सनक आदि मुनीश्वरों के दर्शन किये। नारद जी ने प्रणाम करके उनसे कहा–

- महात्माओं! आपके दर्शन बड़े भाग्य से हुये हैं। आप लोग योगी हैं, दूरदर्शी हैं। आप सदा भगवान के ध्यान में मग्न रहते हैं। कृपा कर मेरा संदेह दूर कर दीजिए। महात्माओं! आकाशवाणी द्वारा जिस उपाय की सूचना मिली है वह कौन सा उपाय है? उसके करने की विधि कौन सी है? कौन सा उपाय करने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को सुख मिलेगा?

सनकादि मुनीश्वरों ने कहा–

नारदजी! आप चिन्ता न करें। हे विरक्त–चूड़ामणि आप धन्य हैं। आप योग मार्ग के प्रकाशक और श्रीकृष्ण भक्तों में सिरमौर हैं। भगवान के भक्त तो सदा भक्ति की स्थापना की चेष्टा करते ही रहते हैं। आकाशवाणी ने जिस उपाय को करने की सलाह दी उसे हम बतलाये देते हैं। हे नारदजी! द्रव्ययज्ञ, तप, योग, स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ आदि सभी कर्म श्रम साध्य,

अस्थिर और स्वर्ग प्राप्त कराने वाले है। शुकदेव जी के द्वारा व्याख्यात श्रीमद्भागवत कथा रूप ज्ञान यज्ञ करने से ज्ञान–वैराग्य स्वस्थ होकर संकट से छुटकारा पा जायेंगे। भक्ति भी सुखी हो जायेगी।

नारदजी बोले–

हे दिव्य कुमारों! वेद, वेदान्त, गीता आदि सुन कर जब भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं जागे तब श्रीमद्भागवत की कथा से वे किस प्रकार जाग जायेंगे?

दिव्य कुमारों ने उत्तर दिया–

हे नारदजी! भागवत कथा वेद और उपनिषदों का सार भरा हुआ है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की स्थापना के लिए ही यह ब्रह्ममय श्रीमद्भागवत पुराण प्रकाशित किया गया है।

गीता के वक्ता व्यासदेव दुखी होकर जब अज्ञान के समुद्र में डूब रहे थे तब आपने उन्हें चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश किया था जिसे सुनते ही व्यास जी की सारी चिन्ता मिट गई थी। भागवत के महात्म्य के सम्बन्ध में आप चिन्ता न करें। श्रीमद्भागवत के सुनने–सुनाने से शोक और दुःख नष्ट हो जाते है।

नारद जी ने प्रार्थना की–

हे महात्माओ! मैं तो आपकी शरण में आ गया हूँ, आपके दर्शन मात्र से सारे अशुभ दूर हो जाते है और आवागमन रूप दुःख दावानल से तपे हुये लोगों को सुखशान्ति मिलती है। प्रेम प्रकाशनी शेषजी से सुनी यह कथा आप मुझे आद्योपान्त सुनाइये। अनेक जन्मों के सञ्चित भाग्य से ही सत्संग की प्राप्ति होती है। उस सत्संग के प्रभाव से झटपट, मोह और मद के अंधेरे को हटाता हुआ, विवेक उदित हो जाता है।

विचारणा

सद्ग्रन्थों के अध्ययन–मनन, सत्पुरुषों के संग तथा विवेक–वैराग्य के अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत्त होना ही विचारणा नामक्की भूमिका है। जीवात्मा, परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं। इस तत्त्व को समझ लेना विवेक है।

इन्द्रिय एवं विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग दुःखों के ही हेतु हैं। विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। इस प्रकार विवेक–वैराग्य हो जाने पर साधक का चित्त निर्मल हो जाता है; उसमें क्षमा, सरलता तथा प्रिय–अ प्रिय की प्राप्ति में समता आदि गुण आने लगते हैं। महावाक्यों का निरंतर मनन और चिन्तन करना ही प्रधान होता है। अतः इस भूमिका को विचारणा अथवा मनन भूमिका कहा गया है।

प्रेम ज्योति

(भक्ति प्रतीक)

निर्मला चन्देल
उदयपुर (राजस्थान)

प्रेम है हृदय की रागिनी
है जीवन का आधार
व्यष्टि से व्यष्टि को जोड़ने की
है साधना का आगार
समष्टि को करता है तरंगति
प्रेम है सतत् प्रज्वलन की ज्योति
अद्‌भुत समर्पण और है
विसर्जन का आधार
दिव्य प्रकाश की है अनुभूति।
अंतरंगता, तन्मयता, करुणा
का है मूल मंत्र
प्रेम है एक शाश्वत सत्य
अद्वैत भक्ति की है जलधारा
एक शक्ति है, प्रेरणा का अलौकिक छंद
मुक्ति का है महासागर
महिमामयी विराटता–भव्यता का
है अद्वितीय प्रेम संसार
प्रेमपूर्ण भक्ति की महिमा
है अद्वितीय भक्ति
स्नेह, प्रेम एवं भक्ति ही
श्री गुरुदेव 'अनन्त श्री' जी की
अनन्य भक्ति, प्रेम का है आधार।
प्रेम है हृदय की रागिनी
है जीवन का आधार।

चेतजा मानव

मोती राम गर्ग, अलूपुर

क्यों हाय हाय कर रहा,
फिर पीछे पछताएगा।
जीव हंस उड़ जायेगा,
धन यहीं रह जायेगा।
इतना सा बस काम कर
निशदिन प्रभु का ध्यान कर,
वो ही खेवन हार है,
वो ही पार लगाएगा।
जिसने तुझको जन्म दिया,
पाल–पोस कर बड़ा किया
जिसने तुझ को बुद्धि दी,
उसी में ध्यान लगाए जा।
न और किसी से कर आसा,
दुनिया मायाजाल है।
यहां पर कुछ नहीं रखा,
झूठा तेरा ख्याल है।
नन्हे से इस हृदय में,
कमल का फूल खिला दे।
गुरुदेव ऐसी दया करना,
आत्म साक्षात्कार करा दे।।
सब रिश्ते नाते झूठे हैं,
इन के मोह में नहीं फसना
गुरु का नाम सच्चा है
जो भव से पार लगा दे।।
यह दुनिया दुःख संसार है,
इसमें नहीं फसना प्यारे।
प्रभु का नाम सुमर ले,
बंधन कट जायेंगे सारे।।
अकेला आया था दुनिया में,
अकेला ही तो जाना है।
यहां बसेरा है दो दिन का,
फिर जा कर हिसाब दिखाना है।
इस जीवन में प्यारे, योग करना सीख ले।
योग से कल्याण है, ध्यान करना सीख ले।।
मोती राम ब्रह्म मूहर्त में, करता तेरा ध्यान।
तुम ही जीवनदाता हो,
करते रहते सब का कल्याण।।

तत्व क्या है?

प्रस्तोता – अशोक दिग्विजय

तत्व, तथ्य तथा तद् शब्द में वैयाकरणविद्वान् ही अन्तर निकाल सकते हैं। 'साहित्यदर्पण', 'भाषापरिच्छेद', 'मानवगृह्यसूत्र', 'सांख्यकारिका' तथा 'शाकुन्तल' आदि में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। मेरी दृष्टि में 'तत्व' का अर्थ है 'उसका भाव'। यदि 'तत्व' के साथ 'सारतत्व' जोड़ दें तो अर्थ में कोई अन्तर नहीं होगा। जो तत्व है, वही सारतत्व है। तत्व का विभाजन नहीं हो सकता। कुछ लोग 'तत्व' का अर्थ 'निचोड़' के रूप में करते हैं। किंतु आम फल का तत्व निचोड़ा जाये या न निचोड़ा जाये, यह एक ही बात है। उसे निचोड़ने वाला कोई नयी वस्तु नहीं प्राप्त कर रहा है।

तब भगवतत्व क्या होगा? श्रीमद्‌भगवतगीता के अनुसार यह उत्तम पुरुष सबसे भिन्न है– **'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः'** (15/17)। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार उसने अपने को स्वयं उत्पन्न किया। ब्रह्म सूत्र के 554 सूत्रों में परमपुरुष के विषय में बहुत कुछ कहा गया है, जिसे साधारण व्यक्ति के लिये समझना कठिन है। उसके 3/2/27–28 सूत्रों में स्पष्ट है कि ब्रह्म का प्रकाश तथा उसका स्रोत दोनों एक ही है। तब ऐसे परम पुरुष भगवान का तत्व उससे भिन्न नहीं हो सकता। तत्व तभी ज्ञात होगा, जब तत्व का स्रोत भी बुद्धि में आ जाये। आद्य शंकराचार्य ने इस सूक्ष्म रहस्य को बहुत कुछ समझाया है। पर ऐसे रहस्य को समझ सकने वाले कितने हैं और वे लोग कितना नीचे उतर कर समझते हैं, इसका उदाहरण एक हिन्दू प्रकाशक द्वारा हिन्दू की लिखित अंग्रेजी पुस्तक से जो अभी हाल में नयी दिल्ली में प्रकाशित हुई है, मिलता है। इस अज्ञानी लेखक ने उपनिषद्, सांख्य, शांकरभाष्य आदि के ब्रह्म के विवेचन को स्वयं बिना समझे उसे 'शाब्दिक वमन' की संज्ञा दे दी है। गर्गसंहिता में भगवान शंकर ने भी कहा है कि तत्व का भेद जान लेने पर यह ज्ञान हो जाता है कि 'मैं आप में हूँ। समुद्र में तरंग होती है, तरंग में समुद्र नहीं होता।'

सत्यपि भेदागमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
समुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

(गर्गसं. अश्वमे. 39/4)

'शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म' शिव और शक्ति यही ब्रह्म है। तब इसका तत्व क्या होगा। न मैं रूप हूँ, न कर्म हूँ, न मोटा हूँ, न पतला हूँ। मैं केवल उसके रूप का लक्षण हूँ–

न रूपोऽहं न कर्माणि न मनुष्यो न द्विजाद्विजः।
स्थूलोऽहं न कृशो नाहं किंतु चिद्रूपलक्षणः॥

जब इतना ज्ञान हो जाये, तभी कैवल्यपद की प्राप्ति होगी–**ज्ञानादेव तु कैवल्यम्** –(शंकराचार्य)

पाणिनि ने 'श्वयुवमघोनां अतद्धिते' सूत्र में कुत्ता, युवा तथा इन्द्र इन तीनों को एक साथ ही जोड़ दिया है। एक लड़की माला गूँथ रही थी। उससे किसी ने प्रश्न किया– 'तू काँच, मणि और सुवर्ण सब एक साथ क्यों गूँथ रही है?' उसने उत्तर दिया– 'जिस प्रकार पाणिनि ने कुत्ता, युवा तथा इन्द्र को एक साथ रखा, वैसे ही मैं भी कर रही हूँ–

काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे
ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्रम्।
अशेषवित् पाणिनिरेक सूत्रे
श्वानं युवानं मघवानमाह।।

इसी श्लोक को जरा दूसरी दृष्टि से देखिये तो सब तत्व बराबर हैं–एक ही सूत्र में है। और वह है भगवान। वहाँ क्या अन्तर हो सकता है? तत्व एक है। भिन्न हो नहीं सकता। नरहरि स्वामी ने अपने बोधसार में लिख दिया–

प्रियत महृदये वा खेलतु प्रेमरीत्या
पदयुगपरिचर्यां प्रेयसी वा विधत्ताम्।
विहरति विदितार्थे निर्विकल्पे समाधौ
ननु भजनविधौ वा तुल्यमेतद् द्वयं स्यात्।

(31/47)

पति के हृदय पर प्रेम से अभिभूत (महाकाली) होकर खेल रही हो या (लक्ष्मी) रूप से उनके पद की सेवा कर रही हो, समान है। इसी प्रकार साधक निर्विकल्प समाधि में विहार कर रहा हो या केवल भजन कर रहा हो–सब बराबर है। तब इनमें कौन–सा तत्व रहा जो स्वयं एक भिन्न सार या तथ्य कहा जाये।

बंगाली में कविता है–

जीवने मरणे निखिलभुवने ये खाने ये खानि लबे।
चिर जनमेर परिचित ओहे तुमहि चिनाइदे सबे।।

'जीवन, मरण, समग्र विश्व में, यहाँ, वहाँ, सर्वत्र सभी लोग तुम्हीं को बतलाते है, जो चिरजन्म से हमें परिचित है। तब उसके अलावा और तत्व क्या होगा?'

पुरुष

भगवान् ही पुरुष है। हम सब तो छाया है। **शिवः आत्मा पुरुषः।** साक्षी, चैतन्य पुरुष है। पुरुष का अर्थ है– **पुरीषु शेते यः स पुरुषः। प्रत्येकसत्तासु साक्षीरूपेण यः सुप्तोऽस्ति स एव पुरुष उच्यते।** जो प्रत्येक सत्ता का साक्षी–जानकार होते हुए भी सो रहा है, वही पुरुष है। उस पुरुष ने जो मौलिक नियम बनाये है, उसी से हम सब चल रहे है। इन नियमों के प्रति आदर का नाम है–'भय'। इसी नियम के भय से अग्नि जलती है, सूर्य तपता है, चन्द्रमा, वायु, मृत्यु

सभी इसी के द्वारा चल रहे हैं–

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।

कठोपनिषद् (2/3/3) का यह कथन बड़े महत्व का है। पुरुष के इसी भय अथवा केन्द्रीय नियम के प्रति आदि से सब कुछ हो रहा है। यदि पुरुष कहलाने वाले हम लोग परम पुरुष के नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं तो हम अपने को पुरुष कैसे कह सकते हैं? शकुन्तला ने दुष्यन्त से कहा था– 'मनुष्य के हरेक कर्म को गुप्त रूप से देखने वाले बारह गुप्तचर हैं– सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात्रि, प्रातः तथा सायंकाल'–

आदित्यचन्द्रावनलानिलौ च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये
धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्।।

(महा. आदि. सम्भव. 74/30)

किंतु किसी को इन गुप्तचरों की चिन्ता नहीं है। कोई पुलिस अधिकारी तो है नहीं, जो जेल में डाल देगा। मरने के बाद की किसे चिन्ता है? यह गुप्तचर भगवान के साक्षी या तत्व तथ्य भी कहे जा सकते हैं, किंतु जब भगवान की सत्ता में ही विश्वास न हो तो उसका तत्व और साक्षी भी निरर्थक वस्तु होगी।

जिस प्रकार 'पुरुष' में वे सभी गुप्तचर निहित हैं, जिनका ऊपर उल्लेख है, उसी प्रकार हम मनुष्यों में भी वह सब वर्तमान है। वेदान्त सूत्र के अपने 'गोविन्द भाष्य' में बलदेव विद्याभूषण ने ब्रह्म को 'हरि' तथा भागवत–गण को 'हरिदास' कहा है। ब्रह्म को ही वे इस सृष्टि का कर्ता कहते हैं। ब्रह्म और पुरुष (मनुष्य) में भेद को वे बड़े अच्छे से समझाते हुए कहते हैं– 'यह अन्तर वैसा ही है, जैसे दण्ड (छड़ी) लेकर चलने वाले (दण्डी) पुरुष में।' छड़ी–दण्ड और पुरुष मिलाकर वह 'दण्डिन्' कहलाता है। यह ब्रह्म ही शरीरधारी होकर जीव प्रपञ्चविशिष्ट हो जाता है। यह संसार ही प्रपञ्च है। जो असत्य नहीं, वह सत्य है। भगवद्रचित कोई वस्तु असत्य नहीं हो सकती। रामानुज, निम्बार्काचार्य–ये सभी इस प्रपंच सत्ता को तथ्य रूप में स्वीकार करते हैं। अद्वैत–मत के प्रवर्तक शंकराचार्य के अनुसार प्रपंच अवास्तविक है, असत्य है। इन दोनों कथनों में कौन सही है, इस विवाद में पड़ने की हमारी क्षमता नहीं है। पर इसमें किसी का मतभेद नहीं है कि प्रपंच सत्य हो या असत्य, वह है– उस परम पुरुष का ही तत्व। यदि उसका तत्व है तो उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। संसार में ऐसा क्या हो सकता है जो उसके 'भय' की परिधि के बाहर है– भय का अर्थ हम ऊपर दे आये हैं–

मौलिक नियम

रामानुज ने 'तत्वत्रय' अर्थात् चित् (आत्मा) अचित् (भौतिक पदार्थ) तथा ईश्वर के

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। बलदेव ने इसमें काल और कर्म को जोड़ दिया है। यानी तत्वत्रय न होकर तत्वपञ्चक हो गया। पर तत्व पाँच–सात या फिर तीन ही क्यों न हों, हैं ये पुरुष के तत्व और यदि उसके तत्व हैं तो चिद्रूप हैं और 'धर्मभूत ज्ञानाश्रय' भी होंगे ही।

ब्रह्म चित्–अचित्–शक्ति का 'उपादान कारण' है। यही सूक्ष्म 'निमित्त–कारण' है। बलदेव के अनुसार जीव मुक्त होने पर भी हरिदास बना रहता है। ब्रह्म से पृथक् रहेगा तो यह भेद बना रहेगा। रामनुज तथा निम्बार्क या शंकराचार्य भी ऐसा नहीं मानते। निम्बार्क कहते हैं कि जीव की 'भक्ति' से ब्रह्म मुक्ति प्रदान करता है। किंतु उनके अनुसार मुक्त जीव ब्रह्म से साथ साधर्म्य प्राप्त करता है, ब्रह्म नहीं हो जाता। भास्कराचार्य कहते हैं कि मुक्ति के बाद जीव का ब्रह्म से 'स्वाभाविक भेद' बना रहता है, किंतु निम्बार्क और रामानुज निर्गुण ब्रह्म मानते ही नहीं। वे उसे सगुण कहते हैं। किंतु 'न निर्गुण है, न सगुण' ऐसा कहकर अद्वैतमत एक गूढ़ विचारधारा पैदा कर देता है।

मैं यह सब इसलिये नहीं लिख रहा हूँ कि पुरुष सगुण है अथवा निर्गुण है, इस तत्व का विवेचन कर सकूँ। **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** जब हुई तो जीव अणु होते हुए भी उसमें विभुत्व वर्तमान होने के कारण यदि विभुत्व–शक्ति ब्रह्म से उपलब्ध है तो वह ब्रह्म से अभिन्न होगा ही। तब उसके पास ब्रह्म तत्व तो रहेगा ही, अतएव पुरुष अथवा भगवान के तत्व से रहित क्या हो सकता है? उसके तत्व से विहीन कुछ हो भी नहीं हो सकता। इसीलिये हमारा शास्त्रीय महावाक्य है– **'तत्वमसि'** 'वही तत्व तुम हो।' तो इस स्वयं भगवत के अतिरिक्त और हो भी क्या सकते हैं।

भक्ति

जब 'पुरुष' को हम मनुष्य अपने से पृथक् नहीं कर सकते तो उसका तत्व तथा तथ्य दोनों हम पुरुषों में वर्तमान हैं। पर अज्ञानवश अगणित लोग ऐसे भी मिलेंगे, जो भगवान या ईश्वर नाम की वस्तु को मानते ही नहीं। किंतु यह हो नहीं सकता कि ईश्वर को माननेवाला अपने मन में एक रिक्तता, एक खालीपन का अनुभव न करता हो। जैनी या बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते, किंतु घूम–फिरकर वे भी महावीर, बुद्धादि को ईश्वर मानते हैं। जैन आचार्य कुन्दकुन्द ने 'भाव पाहुड' में लिखा है कि 'मेरा आत्मा एक है, वह ज्ञानदर्शन–समन्वित है। शेष सब बाह्य पदार्थ हैं।' हाथी–गुम्फा–लेख में जैन–उक्ति है–**'नमो अरहन्तारं नमो सब्ब सिद्धानम्'** सिद्ध ही तो भगवत् तथ्य है, तत्व से भी ऊपर की वस्तु है। ईश्वर को जीव की संज्ञा देकर बौद्ध या जैन संतुष्ट हो जाता है, पर उससे असली प्यास बुझती नहीं। श्रीमद्भागवत ने ठीक ही कह दिया कि सूखा ज्ञान उसी प्रकार निरर्थक है, जिस प्रकार अनाज के भूसे को पछोरना। बिना प्रेम के ज्ञान का मूल्य क्या होगा। परमात्मा और आत्मा का सम्बन्ध ऐसा है कि दोनों एक–दूसरे के लिये तड़पा करते हैं। एक में मिल जाने के लिये मन के भीतर सदैव उथल–पुथल मची रहती है।

(शेष अगले अंक में)

श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर)

का

यौगिक सत्साहित्य

पुस्तक का नाम	मूल्य
1. योग सिद्धान्त, भाग-1	रु. 100.00
2. योग सिद्धान्त, भाग-2	रु. 100.00
3. मेरी निजानुभूतियाँ	रु. 10.00
4. भोग-रोग-योग	रु. 10.00
5. जीवन तत्व (बड़ा)	रु. 15.00
6. जीवन तत्व (छोटा)	रु. 5.00
7. ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	रु. 10.00
8. योगिराज मुल्खराज जी	रु. 10.00
9. प्रभुजी की स्वहस्तलिखित डायरी	रु. 20.00
10. मन की एकाग्रता के साधन	रु. 7.00
11. [illegible] वाणी	रु. 10.00
12. योग क्यों – कैसे	रु. 7.00
13. गुरु गीता	रु. 10.00
14. योगी की अतुलित शक्ति	रु. 7.00
15. सुधा संगीत	रु. 5.00
16. योग क्या ?	रु. 5.00
17. यम-नियम	रु. 7.00
18. यौगिक षट्कर्म	रु. 5.00
19. सचित्र योगासन	रु. 20.00
20. समाधिस्था योगनियाँ	रु. 10.00
21. योग रामायण	रु. 20.00
22. योगेश्वर चरित्रमाला	रु. 5.00
23. सर्वसमर्थ गुरुदेव	रु. 7.00
24. अद्भुत महायोगी	रु. 10.00
25. सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	रु. 5.00
26. योग अमृत भजनावली	रु. 5.00
27. दीदी के भजन	रु. 5.00
28. मेरा सवाँई आगमन	रु. 7.00
29. सवाँई के चमत्कार	रु. 10.00
30. अध्यात्म भजनावली-1	रु. 5.00
31. अध्यात्म भजनावली-2	रु. 5.00
32. अध्यात्म भजनावली-3	रु. 5.00
33. अध्यात्म भजनावली-4	रु. 5.00
34. अध्यात्म भजनावली-5	रु. 5.00
35. Life Force	रु. 10.00
36. योगासन चित्रपट	रु. 10.00
37. योगासन चित्रपट (छोटा)	रु. 5.00
38. महायोगी की लोकयात्रा	रु. 100.00
39. गुरुदेव वचनामृत (तीन खण्डों में)	रु. 100.00
40. सद्गुरु कृपालीला, भाग-1	रु. 35.00
41. सद्गुरु कृपालीला, भाग-2	रु. 40.00
42. चरणोदक	रु. 10.00

उपरोक्त पुस्तकें आश्रम पर स्वयं आ... अथवा डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती है।
डाक एवं पैकिंग खर्च पाठकों को स्वयं वहन करना होगा। – व्यवस्थापक

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (मुस्तफापुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को जनता में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

विभिन्न डाकघरों में विज्ञापन की सुविधा:

1. डाक लिफाफों एवं अंतर्देशीय पत्रों (पोस्टल स्टेशनरी) पर विज्ञापन

2. मेघदूत पोस्टकार्ड पर विज्ञापन (स्पॉन्सरशिप)

3. डाक वाहनों पर विज्ञापन का आयोजन (स्पॉन्सरशिप) दर रु. 1500 प्रति वैगन प्रतिमाह, वाहिक पार्ट रु. 500.00 प्रति हफ्ता

4. डाकघरों के परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह

5. डाकघर के अंदर या बाहर प्लेसमेंट कोई अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 1000/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह

6. डाकघर के काउंटर पर ग्राहक प्रोत्साहन की कार्ड छपवाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति कार्ड (न्यूनतम 400)

7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन – पोस्ट कार्ड की आधी जगह पर छापी गई विज्ञापन दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्टकार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाताराम शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (मुस्तफापुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. न. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाताराम शर्मा